

BES

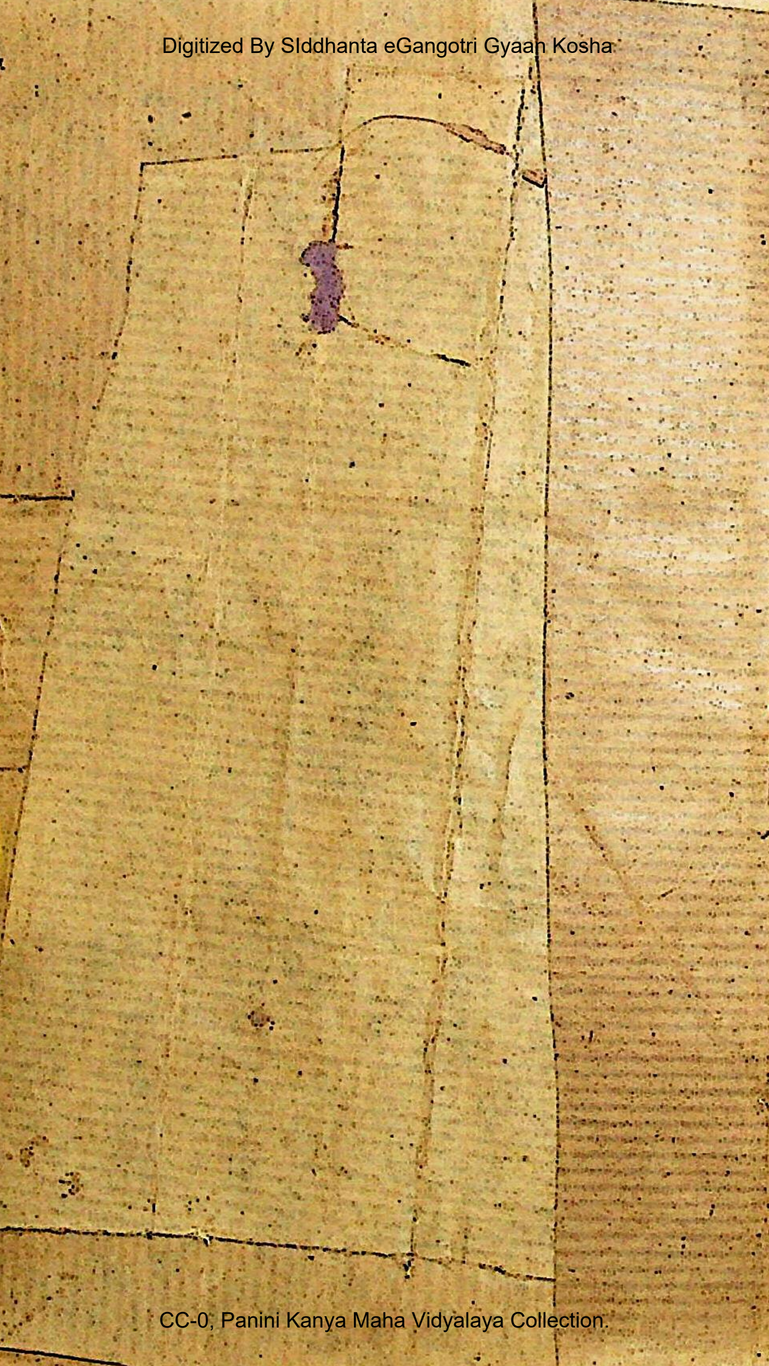
LIFE

Serial No...

Date 10...

VIJAY

VEN





धनुर्वेद

(शस्त्रास्त्र का इतिहास)

तथा

प्राचीन धनुर्वेद की पुनरावृत्ति



लेखक

पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार
गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी

प्रकाशक

कर्म्मचन्द भल्ला, स्टार प्रेस, प्रयाग

१९७४ विक्रमाब्द

प्रथम वार] [मूल्य ॥)





समर्पण



जिन प्राचीन ऋषियों ने अपने अतुल तपोवृत्ति से भारत गौरव को अति उज्ज्वल किया था और जिनके लुप्त-प्राय ग्रन्थदीपक भी कभी २ टिम टिमा कर संसार को मार्ग दिखाते हैं उनके महान् ज्ञान प्रकाश-राशि को फिर से प्रकाशित करने वाले ऋषि दयानन्द के परम पवित्र चरण कमलों में यह प्रबन्ध समर्पित करता हूँ ।

जयदेवशर्मा

भूमिका

वर्त्तमान समय में हम भारत के निवासी अपने जातीय वैभव को इस प्रकार भूले हुये हैं जिस प्रकार गीदड़ की बिल से निकल कर गीदड़ों के साथ पला बच्चा। उसको जातीय वैभव बताने के लिये फिर से किसी उद्बोधन की आवश्यकता है जिससे उसे प्राचीन वैभव का ज्ञान हो उसी उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये यह छोटा सा प्रयत्न किया गया है।

यद्यपि "नक्कारख़ाने में तूती की आवाज़ क्या सुनाई पड़ेगी" अर्थात् पश्चात्य रणाङ्गल में गड़गड़ाती और खगोल मण्डल के शामयाने को थर्राती हुई महाभीषण संहारकारिणी तोपचण्डियां के अट्टहास के होते हुये प्राचीन कालकी आग्ने-यास्त्र शतघ्नी आदि प्रसुप्त हेमवती उमा का परास्मित क्या सुनाई पड़ेगा। तथापि जातीय गर्व के मद में अन्ध हुये पाश्चात्य दिङ्कुञ्जरों का प्राचीन जातियों के वैभव को तुच्छ दृष्टि से देखने के आग्रहपूर्वक मद का भङ्ग करने के लिये पर्याप्त शुण्डदण्ड में पिपीलकोपसर्पण के सदृश तो यह प्रयत्न अवश्य होगा।

दूसरा प्रयोजन यह है कि भारत की बिखरी शस्त्रास्त्रकला को एक स्थान पर न देखने से प्राचीन वैभव अति स्वल्प तथा न होने के सदृश प्रतीत होने लगता है सो काल की कराल करवाल की धार से नष्ट भ्रष्ट हुये ग्रन्थ प्रकाण्डों के लब्धावशेष से जैसा भी प्रबद्ध स्मारक बन सकता है वैसा बनाने का प्रयत्न किया गया है।

तीसरा प्रयोजन शस्त्र तथा अस्त्रादिका चिरकाल से संस्पर्क न होने से यह विद्या हमारे ब्राह्मण से ले कर शूद्र तक सभी से लुप्त हो गयी। सो अज्ञानान्धकार मग्न चतुर्वर्ण के लिये दीप की बत्ती के सदृश यह पुस्तिका बनेगी इस आशा से यह प्रयत्न किया गया है।

चौथा प्रयोजन यह है कि कतिपयों का यह विचार है कि शस्त्रकला केवल क्षत्रियों के लिये है परन्तु यह बहुत भ्रम है। इतिहास ने भार्गव रामाचार्य, द्रोण, कृप, अग्निवेश, भारद्वाज दधीति, ब्रह्मा आदि सभी प्राचीन काल के तपोनिष्ठ ब्राह्मण इन दिव्यास्त्रों से सुभूषित थे इस प्रकार नाना भ्रमों का निराकरण करने का प्रयत्न किया गया है।

पांचवां प्रयोजन यह है कि जिस आग्नेय चूर्ण या बारुद या तोप बन्दूक या सीसे के प्रयोग से अब यूरोप अपने को जगद्विजयी कहने में फूला नहीं समाता उसी मूल कारण को आविष्कार करने का भी सेहरा भारत के सिर पर ही बधेंगा। यही बात दर्शाने का प्रयत्न किया गया है।

छठां प्रयोजन यह है कि जिस तप से भारत का प्राचीन वैभव स्थिर था भारत में अब उसका सर्वथा अभाव है। उसीको उनरुज्जीवित करने के लिये भी जब तक शौर्य का मार्ग न दिखाया जाय तब तक तपोवृत्तिका उपदेश केवल पोल है अतः यह पुस्तिका उस उपदेश को भी यथा सम्भव पूर्ण करेगी।

सातवां प्रयोजन यह है कि भारतीय नवशिक्षित लोग प्राचीन गौरव पर धूल प्रक्षेप करने का अनवरत प्रयत्न कर के नवसभ्यता के गीत गाने के लिये मातृ भूमि के गौरव के प्रति कृतघ्न बन रहे हैं मानो पुत्र बन कर धायी को खुशकरने

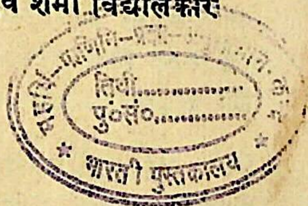
के लिये वास्तविक माता की निन्दा कर रहे हैं सो उनका लगाया कलंक के प्रक्षालन करना तथा मत्सरसे देखने वाले नेत्रों में ज्ञानाञ्जन शलाका फेरना भी इस पुस्तक का प्रयोजन है।

शेष सब प्रयोजन पाठक स्वयं ही यथा तथा कल्पना करलें।

विद्वानों का अनुगामी :—

गुरुकुल
१५, ४, ७४,

जयदेव शर्मा विद्यालंकार



—:०:—

धनुर्वेद

[आग्नेयास्त्र का इतिहास]

प्रथम प्रकरण

यूरोप की रणचण्डी का घोर नाद सुनकर सम्पूर्ण धरातल आमूल चूल कांप उठता है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि सम्पूर्ण पृथिवी लोहमय होती तो वर्त्तमान आसुरी संहारक वैज्ञानिक, अपने विज्ञान के बल से, एक इतनी भयङ्कर तोप बनाता—जिससे सम्पूर्ण पृथिवी मण्डल के गोले को दाग कर अपने शत्रु के ब्रह्माण्ड के परले कोने पर लगे मोर्चे को तोड़ डालता। और सारे चौदहों लोकों को गोले का भीषण नाद अवश्य थर्रा देता। इस उत्प्रेक्षित अतिशयोक्ति का तात्पर्य यह है कि आग्नेयास्त्र का वर्त्तमान में आविष्कृत मूलमन्त्र तथा क्रियाकाण्ड इतना प्रबल है कि अपने अनुकूल क्षेत्र में बड़े ही अलौकिक कार्य कर सकता है। वास्तव में यह अपने ज़माने में बहुत ही ज़ोर पर रहा है। प्राचीन महाभारत में आग्नेयास्त्र बड़ा भयङ्कर था। परन्तु वर्त्तमान में तो अन्य सब अस्त्र शस्त्रों को इसी आग्नेयास्त्र ने हड़प कर लिया है। आओ पाठको! इसका इतिहास सुनाएं देखो कैसा मनोरञ्जक है।

२—यह निर्णय करना बहुत कठिन है कि यह सब से पहले किस देश में पैदा हुआ, पर हां सब से अधिक और

वृहदाकार वृद्धि निस्सन्देह हरिवर्ष के भूखण्ड में हुई और उत्तरोत्तर वृद्धि करते अब कृतघ्न बनने की धमकी दे रहा है। पूर्वीय देशों का सौभाग्य है कि उनकी बगलों में ऐसा साँप नहीं पला। इसका मूल बीज फूटने वाला बारूद ही है। यह बारूद सब से पहिले किस स्थान पर आविष्कृत हुआ और किसने आविष्कार किया। यह एक वर्त्तमान सभ्यता के भयंकर आग्नेय असुर का रूप देख कर प्रश्न हो जाता है।

कइयों के सिर पर इसके आविष्कार का सेहरा बंध सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि भिन्न २ समय में भिन्न आविष्कारकों ने इसका नये सिरे से परीक्षण करके इसको आविष्कृत किया है और भिन्न २ देशों में इसने अपने भिन्न २ रूप दिखाया है, परन्तु फिर भी सब से पहिला आदि ब्रह्मा इसका कौन है? इस समस्या को हल करते हुए मैं तो यही कहूँगा कि भारतवर्ष के उन्नत मस्तिष्कों ने इस बारूद की नाड़ी पहिचानी थी और सब से पुरातन लेख इस आग्नेयास्त्र तथा बारूद का यदि किसी भाषा में लिखा गया है तो केवल संस्कृत में ही। भारतवर्ष के प्राचीन काल में इस अस्त्र द्वारा सीसे की गोलियां फेंकना तथा बँधने वाले बाण फेंकना, पत्थर फेंकना आदि बहुत से उपयोग लिये जाते थे। चीन जैसे बूढ़े पौराणिक की पुराण-माला में भी कोई पंक्ति इस विषय में शुक्र-नीति से पुरानी नहीं मिलती इससे उसका इस विषय में नाम नहीं लेना अच्छा है—परन्तु इस प्रकरण को हम आगे दिखायेंगे—पहले हरिवर्ष के आग्नेयास्त्ररूपी तारकासुर का हाल सुनिये।

३ एक फ्रांसिस्कन पादरी बर्थोल्डश्वार्ज जिसका असली

नाम कान्सेन्टीन अंकेलिजन था। जो जर्मनी में रहता था उसने सब से पहिले बारूद का आविष्कार किया जिसका दन्त कथाओं के अनुसार बनना १३३० ई० में शुरू हो गया। उपरोक्त पादरी रसायन का बड़ा प्रेमी था। एक बार तो वह इसका परीक्षण करता २ ऐसा पछाड़ खाकर गिर पड़ा कि अधमरा हो गया परन्तु ईश्वर की दया ने बचाया। उस समय में यूरोप में यह नियम था कि जादूगर क़ैद में डाल दिये जांय। कड़ी तरह से दण्डित हों और यहां तक कि जीते जी जला भी दिये जावें। लोगों में यह फैल गया कि पादरी श्वार्ज जादूगर है इसको सरकार ने क़ैद में दे दिया।

४—परन्तु दूसरा फ्रांसिस्कन पादरी वेकन भी रसायनादि विज्ञान का बहुत ही प्रेमी था। उसने शोरे के कतिपय अद्भुत गुणों का पता लगाये, परन्तु पादरी लोगों में इसकी विज्ञान-प्रियता ने संशय उत्पन्न कर दिया। उन्होने भी उस पर जादू का दोष लगाया और क़ैद में डाल दिया। पोप क्लैमैण्ट ने एक बार छोड़ दिया परन्तु इसी दोष पर पोप निकलसन ने फिर पकड़ लिया। वेकन अपने समय के लोगों को अनुमति दी थी कि युद्ध के समय शत्रु को नाश करने के लिये शोरे का उपयोग करना चाहिये। वह कहता है कि इसकी बिजली किसी कड़क तथा ज्वालामुखी की सी भड़क होती है। इसका उपयोग पटाकों और आतिशबाज़ियों में किया जाता है। वह अपने "विद्या के गुप्त रहस्य" नामी पुस्तक में लिखता है कि बारूद बनाने के लिये दो चीजें बहुत उपयुक्त होती थीं। एक शोरा और दूसरी गन्धक। परन्तु उसने अपने ज़माने के घोर अत्याचार को

देखकर इनके नामों को बहुत छिपाकर विचित्र सा बनाकर रखा। यह कहा जाता है कि बारूद बनाने का यह रहस्य उसने स्पेन में मूर लोगों से सीखा था। यह जाति उस समय भी कुछ बहुत सभ्य न थी। परन्तु फिर भी अपने आचार, व्यवहार, तथा पुराने इतिहास से पूर्वीय जातियों से बहुत सम्बन्ध रखती थी।

५ - १२४९ ईस्वी में अरबी भाषा में बारूद के ऊपर ही एक हस्तलिखित पुस्तक मिली—जो अब भी रायल एस्क्यूरिन (Royal asquria n.) पुस्तकालय में विद्यामान है।

६—पैरिस के नेशनल पुस्तकालय में "मार्कस ग्रक्स" के नाम पर एक हस्त लिखित पुस्तक है। इस ग्रन्थकार के बारे में हमें कुछ भी विशेष पता नहीं है। कई कहते हैं कि यह पुरुष नौवीं शताब्दी में हुआ है और दूसरे कहते हैं कि तेरहवीं शताब्दी में हुआ है। प्रतीत होता है कि इसका प्रथम ग्रन्थ यूनानी भाषा में लिखा था। इस पुस्तक में शोरे का नाम तीन बार आया है। इसकी सम्मति में बारूद बनाने के लिये, दो हिस्से कोयला, एक हिस्सा गन्धक, और छः हिस्से शोरा, होना चाहिये।

७—सातवीं शताब्दी के अन्त में वस्तुविद्या के ज्ञाता कोलिनिक्स हेलिपोलिन निवासी जिसने, जब कि अरब वासियों ने कुस्तुनतुनिया को ६६८—ई० में घेर लिया था, एक प्रकार के लोहे के नलें तैयार किये थे। जिनका आकार भयंकर पशु के तुल्य था। जिनका मुख आगे को खुलता था और जिनमें लोहे के गोले और पत्थरादि भर दिया जाता था

और बारूद रखकर छोड़ देने से इतना भयंकर शब्द हुआ करता था कि घेरने वाले शत्रु घेरा उठा कर भाग जाते थे। इसके अनन्तर कहते हैं कि इस बारूद के रहस्य को यूनान वालों ने ४ शताब्दियों तक छिपाये रखा। परन्तु एक सारसीन ने उनके इस भेद को जान लिया जिसका उपयोग उसके बाद जैरोसिलम में क्रुसेड के युद्धों में किया गया। परन्तु गवेषणा से पता लगता है कि ग्रीक या यूनान वालों की बारूद द्रवरूप थी, ठोस न थी। जिसमें सब से अधिक भाग नैप्था का था। यह द्रव कास्पियन के किनारे पर बाकू के सामने की जमीन में बहुत होता है। मिट्टी का तेल भी इसी झील के किनारे बहुत से बड़े २ कुओं में होता है। यही नैप्था कास्पियन के किनारे सेलकीन स्थान पर, मैसोपोटैमिया में, कूर्दिस्तान में, उत्तर भारत में, और चीन में प्रायः मिलता है। सायद कालोनिकस ने इसीका आविष्कार किया हो। परन्तु इससे भी पहिले पूर्वीय देशों में इसका उपयोग होता था। इसीका उपयोग फ्रांस के राजा फिलिप आगस्टिस ने डेप्पी के घेरे में किया था। अरब के लोगों में किंवदन्ती चली आई है कि बारूद की विद्या उन्होंने भारत वासियों से सीखी है। इस वस्तु का व्यापार भी प्रायः बहुत हुआ करता था। हां यह बात अवश्य है कि उन्होंने इसकी उन्नति किसी हद्दतक अधिक कर ली थी। भारत ही को आग्नेयास्त्र की माता मानने के बारे में और भी कतिपय गवेषकों की प्रबल सम्मतियां हैं।

८—सब से प्रथम देश, जिसमें बारूद के बने अस्त्रों का प्रयोग हुआ, स्पेन है क्योंकि एक अरबका लेखक १३२३ में इस के बारे में यही सम्मति देता है।

६—यह शस्त्र नली के रूप में बनाये जाते थे इसी लिये इसका नाम cannon है। इसका मूल शब्द काना (canna) जिसका अर्थ सरकण्डा है।

इसी नली को बड़े रूप में बना कर नीचे पहिये लगाकर सब से पहिले प्रयोग चार्लस ५ वें ने या पोपलीयो १० वें ने १५२१ ई० में किया था। उस अस्त्र का नाम पिस्टल था जिस का नाम हिन्दी में पिस्तोल है। पहिले उनमें जलाकर दिया-सलाई या बत्ती ही देनी पड़ती थी। फिर चलती थी। परन्तु आन्धी तथा पानी के समय ये सब निकम्मा हो जाते थे अतः अब उन्नति शुरू हो गई और उन्नति होते २ वर्त्तमान रूप हो गया जो सब कोई जानता है। अब हम पूर्वीय देशों की ओर झुकते हैं।

१०—इतिहास बताता है कि देहली के पास तिमरलेन और सुलतान महमूद की लड़ाई हुई। इसमें महमूद ने १०,००० घुड़सवारों और ४०,००० पैदलों और बहुत से हाथियों को ले कर शत्रु का सामना किया। हाथी कवचों से ढके हुए थे। हाथियों की पीठों पर बड़े २ हौदे थे। जिनमें बैठे बन्दूकची लोग गोलियां और आग बरसाते थे और तीर मारते थे।

चोटें खाकर तिमूर की सेना भागती थी और हाथी आगे बढ़ते थे। पहली वार तो तिमूर इन कवची हाथियों से हार कर लौट गया परन्तु अगले दिन तिमूर ने बहुत से ऊंट लिये और उन पर सूखा घास लाद दिया। और हाथियों के आगे कर दिया। युद्ध शुरू हुआ। और हाथियों के पास जाते ही तिमूर ने घास में आग दे दी, हाथी डर कर भाग गये।

११—भटिनी के किले पर आक्रमण करते हुए भी तिमूर को, ऐसी ही कठिनाइयां उठानी पड़ीं थीं। किले के अन्दर के आदमी उस पर बाण पत्थर तथा आग की वर्षा करते थे।

१२—फरिश्ते के अनुसार पश्चिमी एसिया में मुगुल राज्य के संस्थापक हलाकूखां ने १२५८ ईस्वी में देहली के राजा के पास राजदूत भेजा था। देहलो के वज़ीर ने बड़ी धूम धाम से उसका स्वागत किया। दर्शनीय दृश्य यही था कि ३००० गाड़ियां आतिशबाजी की बहार उड़ा रहीं थीं। उसी ज़माने में यह भी सुना जाता है कि चीन और मुगुलों के बीच हुए युद्धों में इस बन्दूक या अग्नि के अस्त्र का प्रयोग हुआ; यह एक प्रकार का तीर होता था। इसका नाम अग्नि बाण होता था। एक बांस की लम्बी सख्त नली में मटर के से कुछ एक दाने डाल कर उनमें बारूद देदी जाती थी, और आग लगाने पर बड़े वेग से ज्वाला के साथ निकलते थे और "फाह" सा भयंकर शब्द होता था जो १५० कदमों तक बखूबी सुनाता था।

१३—अरबिस्तान के वासी कहते हैं कि भारतीय लोगों में आतिशबाजी या अग्नि लीला बहुत होती थी।

१४—फ़रिश्ता कहता है कि पेशावर पर महमूद गज़नी धावा करते हुए तोप और तुफ़ङ्ग को काम में लाया था।

१५—करनल टाड कहता है कि राजस्थान के इतिहास में हिन्दी कवियों के छन्दों में आग्नेयास्त्र वा अग्नि गोले का वर्णन बहुत आता है। कई कवियों ने रणक्षेत्र के ज्वाला मुखियों का वर्णन किया है।

१६—महम्मद क़ासिम ने मंजनीक़ नाम का यन्त्र प्रयोग किया था जब देवाल के बन्दर पर हमला किया था। पहला काम इससे यह लिया था कि ऊंचे पगोड़ों के शिखर पर मार कर उसका झण्डा गिराया गया था। ६ हिज़री सन् को महम्मद हजरत ने भी तईफ़ के युद्ध में इस मञ्जनीक नामक अस्त्र का प्रयोग किया था।

· मेनियस फ़िलोस्टेटूस, जो राजा कराकुल्ला के दर्बार में था लिखता है कि सिकन्दर यदि ज़माना पार कर लेता तो अव-श्य भारत वर्ष के सब आस पास के देश अपने आधीन कर लेता परन्तु फिर भी वहां धर्मनिष्ठ पुरुषों के दुर्गों का जय करना कठिन था। क्योंकि वे लोग दिवारों से तूफ़ान और उपद्रव, बिज़ली और बज्र गिराते थे। शायद इसी लिए सिकन्दर अपना सा मुंह लेकर लौट गया।

१७—ईजिप्त के प्रसिद्ध विजेता हरकुलिस और बक्कस भी इसी विद्युत् वज्रपात के डर से हताश होकर लौट गये थे।

१८—सिकन्दर ने एक पत्र में अपने गुरु अरस्तू को लिखा था कि मेरी सेना बहुत आपत्ति में है क्योंकि उस पर भारत वासियों ने भड़कती ज्वाला वाली विजली मार कर निकम्मा कर दिया।

१६—गोरस राजा के महान्ध हाथियों की झपेट खा खा कर निराश होकर लौटे हुए सिकन्दर के पूछने पर, फर्दोसी ने यह सलाह दी कि एक लोहे का घोड़ा बना कर, उसमें नप्था आदि भर कर, उसको पहियों पर रख कर हाथियों के बीच में आ खड़ा करो, और आग दे दो, सब हाथी उससे उड़ जायगें।

२०—भारत के विषय में ऐतिहासिक तेसीस लिखता है कि प्राचीन भारतीय एक तेल तैयार करते हैं जिसमें आग बहुत ही जलदी लग जाती है। यह तेल एक बहुत बड़े जानवर से निकाला जाता है। वह जानवर बड़ी २ नदियों और समुद्रों में होता है। इसके दो बड़े दान्त होते हैं। दिन में कींचड़ीली भूमि में रेतपर सोया करता है और रात को अपनी भोजन की खोज में जगलों में घूमता है। और बड़े २ पशुओं को निगल जाता है। सीफूललि सेकन्डस के अनुसार यह पशु हाथी को भी ग्रस जाता है, ऐसे जानवर को पकड़ने के लिए बकरियों को बांध दिया जाता था, और मौका पाकर शिकार कर लिया जाता था। इसे मार कर धूप में लटका देते थे। ३० दिन में इसका तेल चू चू कर इकट्ठा हो जाता था। इस तेल को मट्टी के मटकों में इकट्ठा कर लेते थे। १० मन के करीब तेल एक पशु से निकल आता था; इस पर राजा की मोहर लग कर राजा के गोदाम में आ जाता था। यह झट ही भड़क जाया करता था, इसलिए दुर्गों के घिर जाने पर इसको जला २ कर द्रवीभूत आग शत्रु पर वरसाई जाया करती थी। इसके मटकों के मटके शत्रुओं पर फेंक दिये जाते थे। जिससे भी छु जाता था वही आग २ हो जाता था एक वार भड़क देने की देरी थी कि इसका बुझाना मुश्किल था। इसके स्पर्श हो जाने पर मनुष्य पशु पत्ती कोई भी नहीं बच सकता था। इसी बात का समर्थन—फ़िलोस्ट्रेस भी करता है—इसके अनुसारः—

२१—यह जन्तु यमुना में था (जन्तु शब्द विदेशी लोगों ने Worm से अनुवाद किया है सो यह उनको भ्रम में डालता

है कि कीड़ा इतना बड़ा कैसे। पर यह भ्रम है क्योंकि जन्तु से सब ज़ानदार लिए जाते हैं) इसकी आग मिट्टी फेंकने से शान्त हो जाती है। इसका नाम स्कोलक्स है। महाशय लेसन ऐसे जन्तु की सत्ता को असम्भव समझते हैं। एच० एच० विल्सन की सम्मति में यह जन्तु मकर ही है। यह ७ हाथ लम्बा होता है। यूनानी नाम मासस्कोलेक्स इसके संस्कृत नाम चुलूकी से मिलता है। चुलूकी का वर्णन बहुत कुछ इस शिशुमार घड़ियाल से मिलता है। (चुलूक संस्कृत में कीचड़ को कहते हैं) उपरोक्त महा ज़न्तु चुलूकी ही है।

२२—उक्त प्रकार का तेल भी एक बड़ी मच्छी से ही पश्चिमीय भारतीय समुद्र तट पर निकालते हैं।

२३—चुलूकि अवश्य मकर या ऐसी ही कोई जाति है। क्योंकि इसी के आकार वाली छिपकली भी किंचुलुक कहलाती हैं। हमने अवश्य बहुत दूर तक आग्नेयास्त्र की वंशावली पा ली है, अवश्य इसके तेल को या नथ्थे को उबाल कर किन्हीं साधनों (पिचकारी आदिकों) से शत्रु की सेना पर फेंका जाता होगा।

२४—इस प्रकार, पाठक जान गये होंगे कि किस प्रकार आग्नेयास्त्र किन किन रूप में कहां २ और कब २ क्या २ तबाही मचता रहा है।

अगले प्रकरण में भारत वर्ष का और भी दूरतक आग्नेयास्त्र विद्या का प्रचार व आविष्कार दिखाएंगे।

इति प्रथम प्रकरण।

द्वितीय प्रकरण

१—हमने पूर्व लेख में पाठकों को अद्भुत बातें सुनाकर आग्नेयास्त्र का टूटा फूटा देश विदेश का पुराना इतिहास सुनाया था। अब की वार बूढ़े भारतरूपी फ़क़ीर की पुरानी गूदड़ी और झोली को टटोलकर दिखाना चाहते हैं कि यह फ़क़ीर बड़ा गुणी है, बड़ा समझदार है, बड़ा वैज्ञानिक है। इसने आग्नेयास्त्र क्या सभी शस्त्रों का वह आविष्कार किया जिसका भीषण, रौद्र गीत गाने के लिए कुरुक्षेत्र के धर्म युद्ध क्षेत्र में द्वापर के अन्तमें बड़े २ नरनगरसंहारी यमदूत उतरे थे, और अद्भुत अस्त्रों की कथा को गाने के लिए रणलीला कर गये। अब इसका भारतीय फ़क़ीर की गूदड़ी से क्या नाता है सो भी सुनिये।

२—शोरा जिसका हाल पहिले बहुत वर्णन कर आये हैं यूरोप की अपेक्षा भारत में बहुत पाया जाता है। इस शोरे के गुणों से भारतीय बहुत अच्छी तरह से परिचित हैं। भारत की गलियों के छोकरे भी आतिशबाजी के अन्दर शोरे के उपयोग से खूब अच्छी तरह से परिचित हैं। यह औषधियों में वैद्यराज दिया करते हैं। उन लोगों ने इसी वस्तु का व्यापार शुरु किया है। बरसात के बाद बंगाल में यह प्रायः बहुत इकट्ठा किया जाता है शुक्र नीत में इसका नाम "सुवर्चिललवण" अर्थात् "दीप्ति या चमक पैदा करने वाला नमक" आता है। इसी को साधारण हिन्दी में "शोरा" शोर करने वाला या सौंचल का नमक कहा जाता है। इस में अम्ल का गुण होने से यह पाचक होता है। इसका पेट की दर्द या कब्ज़ खोलने में प्रायः उपयोग होता है।

३—गन्धकः—गन्धक बारूद का दूसरा घटक है यह भी भारत में बहुत पाया जाता है ख़ास कर सिन्ध में। यह पूर्व से भी बहुत जाता है इसकी गन्ध जलने पर उग्र होती है अतः गन्धक कहा जाता है। यह कई रंगों का होता है पीला, सफ़ेद, नील सा। यद्यपि यह बहुत मुख्य घटक बारूद का है परन्तु फिर भी भारत के कतिपय स्थानों में इसके विना भी बारूद तैयार किया जाता है। रसायन और औषधियों में इसका बहुत ही उपयोग किया जाता है।

४—कोयलाः—तीसरी चीज़ कोयला है। भिन्न २ देशों में भिन्न २ वस्तुओं के लिए कोयला काम में लाया जाता है। आक या आकड़ा जिसको संस्कृत में "अर्क" कहते हैं बारूद तैयार करने में श्रेष्ठ समझा जाता है शुक्रनीति में आकड़ा, सेहुएड इन के कोयले श्रेष्ठ बताये हैं:—

यह अर्क वृक्ष भारत में बहुतायत से पाया जाता है। इसका दूध रसायन वालों के बहुत काम आता है। प्रायः सारी धातुएं इससे मारी जाती हैं। इसका कोयला बहुत हलका होता है। इस के कोयले से आतिशबाज़ी तैयार कर लेना प्रायः हरेक विद्यार्थी जाना करता है। इसका दूसरा नाम मदार है।

५—सुही या सेहुएडः—यह भी कांटेदार एक प्रकार का थोहर है। इसे डण्डे दार थूहर कहते हैं। यह भी भारत में बाड़ के बहुत काम आती है।

६—रसोनः—यह लहसुन है।

७—शुक्रनीति के अनुसार बारूद में इन वस्तुओं का निम्न अनुपान है:—

पांच हिस्से शोरा १ हिस्सा गन्धक एक हिस्सा कोयला उपरोक्त चीज़ों का कोयला ख़ास तौर पर जलाकर और बन्द करके तैयार किया जाता है। इन सब को मिलाकर फिर ऊपर से तेज करने के लिए बारूद पर लहसुन, आक और स्नुही का रस बुरका जाता है, और फिर धूप में सुखा कर तैयार कर लिया जाता है। अपने अनुभव से या वस्तुओं के गुण न्यूनाधिक होने से वस्तुओं के अनुपान बदल देते हैं। इस बारूद को संस्कृत में "अग्नि चूर्ण" कहते हैं।

८—भारतवर्ष के छोटे से छोटे उत्सव, त्योहार पर आतिशबाज़ी या अग्नि लीला बारूद से की जाती है। नालें, चकचूंदर, बिच्छू, अनार आदि कितनी ऐसी चीज़ें हैं जिन में केवल बारूद ही का खेल है। हमने स्वयं भी एक सिक्ख सर्दार को बारूद द्वारा आकाश से आग बरसाते देखा।

९—गुंज़मलूत तवारीख में जिसको १२२६ में अरबी से अनुवाद किया गया था और एक शताब्दी पहिले जो संस्कृत से उल्था किया गया था हम ये पढ़ते हैं कि—"हाल राजा को ब्राह्मणों ने सलाह दी कि वह मिट्टी का एक हाथी बनावे और अपनी सेना के साथ उसे ले चले और जब काश्मीर नरेश की सेना पास आवे तब तुम भाग जाना और हाथी उसी समय फुट पड़ेगा। इस प्रकार काश्मीर नरेश की बहुत सी सेना मर गई।" इसमें केवल फूट जाने की ही करामात नहीं बल्कि एक नियत समय पर फूटना ही विशेषता है।

वैशम्पायन महर्षि अपनी नीति प्रकाशिका में [जिसके बारे में हम अगले किसी लेख में स्पष्ट करेंगे] चूर्ण या चूर्ण-

नलिका का वर्णन करता है यह अवश्य बारूद का बना होता था।

११—लक्ष्मीनारायण—हृदय एक ग्रन्थ है जो अथर्वण रहस्य नामक ग्रन्थ है (इसके विषय को हम पृथक् लेख में भी आगे दिखावेंगे) उस में भी देवी की स्तुति किस विज्ञान के तत्व को मन में रखकर की है।

अंगार गन्धादि पदाथ योगात्।
कर्तुं मनीषानुगुणो यथाग्निः॥
चैतन्यरूपे यमभक्तियोगात्।
कांक्षानुरूपं भज रूपमेतत्॥

लक्ष्मीनारायण हृदयम्

"हे चैतन्य रूपे देवि! मेरी भक्ति के योग से मेरी इच्छानुकूल रूपों को धारण कर जिस प्रकार आग कोयले गन्धक और शोरादि पदार्थों के योग से प्रयोग करने वाले की इच्छानुसार रूप धारण करती है"। इस बारूद को संस्कृत में चूर्ण या अग्निचूर्ण कहते हैं। इस चूर्ण को उपयोग में लाने के लिए जिन २ अस्त्रों का प्रयोग किया जाता है उनका संक्षेप से वर्णन किया जाता है।

१२—शुक्रनीति में अग्नि के दो प्रकार के अस्त्र बताये हैं, एक छोटे आकार के दूसरे बड़े आकार के पहिले प्रकार की नली ५ बालिश्त होती है। एक लम्बी नली जिसके एक मुख पर निशाना साधने के लिये मक्खी लगी होती है और दूसरी ओर लकड़ी का घन लगा होता है। मुख से बारूद भरलिया जाता है और सलाएं से ठोक कर जमा लिया जाता है। फिर चकमक पत्थर से उसको चमका देने से बड़े शब्द से

छूटता है। और बीच में डाली हुई सीसे की गोली को बड़े वेग से मारती है। पदाति लोग इसका अधिक उपयोग करते थे।

१३—बन्दूक या तोप में लकड़ी का धन नहीं लगाया जाता परन्तु उसको एक तेज़ धार के आधार पर रख दिया जाता था जिससे इसकी दिशा बदलने में सुविधा रहे। इसकी मार की दूरी बारूद के जोड़ पर, नाली के मुख पर, तोप की मज़बूती पर और परिणाम पर निर्भर है। गोला चाहें लोहे का हो या सीसे का हो या किसी धातु का हो एक बड़े २ गोले के अन्दर कई छोटी २ गोलियां होती थीं। तोप प्रायः लोहे की होती हैं। नीति प्रकाशिका के अनुसार तोप पत्थर की भी बनाई जाती थी। बन्दूक या तोप दोनों साफ़, सुथरी और बन्द रखनी चाहिये।

बन्दूक या तोप के लिए शुक्रनीति में नालीक या नालिक शब्द आता है। मूल शब्द नल, नड़ है। यह एक खोखला सरकण्डा होता है। संस्कृत के पण्डित प्रायः नालीक के समझने में अशुद्धि करते हैं। वे इसका अर्थ भी विशेष करते हैं पर यह ठीक नहीं।

शुक्रनीति में हम पढ़ते हैं कि राजा अपने रथ में दो बड़े नालिकास्त्र रखे और अन्य भी अग्नि के फोड़ने वाले अस्त्र रखे (शु० नी० ५,२१ २४,)

१४—होलर के भारत के इतिहास में मणिपुर की क़िलाबन्दी के विषय में हम पढ़ते हैं कि शहर के बाहर की तरफ़ बड़ी गाड़ियें लोहे की सङ्गलों से बन्धी हुई थीं। उन

पर अग्नि से छोड़े जाने वाले अस्त्र शस्त्र रखे हुए थे और उन पर सदा पहरा रहता था। (१)

शुक्र नीति में हो किले की या नगर की दीवारों पर तोपें और बन्दूकें रखना और छिद्र होना जिन में से शत्रु पर छिप कर शस्त्र फेंका जावे लिखा हुआ है।

१५—भारत चम्पू के बनाने वाले अनन्त भट्ट ने भी एक वर्षा कालका श्लोक लिखते हुए उपमा बांधी है जिसमें वर्षाकाल एक योद्धा अपने शत्रु ग्रीष्म को वर्षाविन्दु रूपी पत्थर या सीसे को बड़े शब्द के सहित कालाम्बुद रूप नालिकास्त्र से निकलती हुई पत्थर की या सीसे की गोलियों से थोड़ी देर तक चमकती विजुली रूपी बत्ती से सुलगा कर मारता है। [३ । ५४] (२)

इस से भी यही सिद्ध होता है कि यह अस्त्र प्रसिद्ध हो चुका था।

१६—नैषध चरित में भी इसी का पोषक एक पद्य आता है। यह १२ वीं शताब्दि का कवि है इसके ज़माने तक यूरोप में बारूद का पता भी नहीं था। दमयन्ति के नाक को देखकर अपह्नुति अलंकार का प्रयोग किया गया है। दमयन्ती की भुवें नहीं किन्तु काम और रति के वे दो धनुष हैं। उस

---

[१] यानिकै रचितो नित्यम्, नालिकास्त्रै श्च संयुतः।
सबहुदृढ़गुल्मश्च, सुगवाचप्रणालिकैः ॥ अ० २३२ ॥

(२) कालाम्बुदालिनलिकातल-यदीप्तिवर्त्या, संधुक्षितात् मयदिनध्वनि निःसरद्भिः। वर्षाश्मसीसगुलिकानि करैः कठोरैः धर्माभिवातिमवधीद् घनकाल योधः ॥

की नाक नाक नहीं किन्तु नालिकास्त्र छोड़ने की चाह वाले रति और काम की नालिकास्त्र की नालियां हैं। ३)

१७—कामन्द चाणक्य का शिष्य भी कहता है कि काम भोग में पड़े राजा को स्त्री लोग नालिकास्त्र छोड़ कर बीच २ में डराते रहे जिससे राजा युद्ध को न भूल जाय। (४)

कामन्दक का काल भी बहुत पुराना है मैगस्थनीज़ या चन्द्रगुप्त के एक आध शताब्दि पीछे ही यह उत्पन्न हुआ है।

१८—भारत के इतिहास में एक बड़ा भारी परिवर्तन आया है। प्राचीन काल में इस आग्नेयास्त्र का बहुत भयंकर उपयोग लिया जाता होगा। इसी लिए धर्मशास्त्रों ने इसका स्थान २ पर निषेध किया है। जैसे मनु लिखता है "महा-यन्त्राणि वर्जयेत्" अवश्य प्रथम महासंहार हुआ होगा जिसका परिणाम यह दीखता है कि धर्मशास्त्रों ने इसके उपयोग का सर्वथा निषेध किया है। यूरोप में अभी तक धर्मशास्त्रकार पैदा नहीं हुए! इस महायुद्ध के पश्चात् संयुक्त राज्य सभा में जो नियम पास होंगे, इसके उपयोग पर भी अवश्य कोई न कोई नियम तो बन ही जायगा। भारत में तो सरकार ने प्रजा के लिए अब भी बहुत कड़ा नियम बना ही रखा है।

---

[३] धनुषी रतिपञ्चबाणयोरुदिते विश्वजयाय तद भ्रुवौ। नालिकेन तदुच्च नासिकन्त्वपिनालीक विमुक्तिकामयोः॥ नैषध सर्ग २, २८॥

(४) पान स्त्री द्यूतगोष्ठीषु, राजानमभितश्चराः। बोधयेयुः प्रमाद्यन्तम्, उभायैर्नलिकादिभिः॥ कामन्दक ५,५१

१६—आग्नेयास्त्र का वर्णन भी प्राचीन ग्रन्थों में अद्भुत प्रकार का है सो हम तन्त्रों के आधार पर अन्य किसी अध्याय में लिखेंगे।

२०—शतघ्नी भी एक ऐसा ही अस्त्र था जिस में से सैकड़ों गोलियां सहसा निकल कर शत्रु को मारती थीं। ये सब अलौकिक शस्त्रास्त्र विश्वकर्मा ने बनाये, यही पुराणकारों ने लिखा है।

२१—प्राचीन स्मृतियों की खोज करने वालों ने जन्तु-स्मृति भी खोज निकाली है। उस में अद्भुत नियम प्राप्त होते हैं। कतिपय नियम इस प्रकार हैं। 'सेनापति कूट यन्त्रों से युद्ध न करे। विषैले शस्त्रों से न लड़े। नालिकास्त्र का प्रयोग न करे। आग्नेयास्त्र का प्रयोग न करे इत्यादि।"

२२—मनु भी युद्ध के नियमों में यही लिखते हैं—

"न कूटैरायुधैर्हन्यात्, युध्यमानो रणे रिपून्।
न कर्णिभिर्नापिदिग्धै:, नाग्निज्वलित तेजनैः॥"

कुलूक भट्ट अग्निज्वलित तेजन का अर्थ अग्निवाण करते हैं पर विलियम इसका अर्थ करते हैं जिसके कलें आग में तपाये हुए हों। इस दूसरे अर्थ की कुछ सङ्गति नहीं लगती। क्या आग में विना तपाये लोहे से अन्य चीजें बन सकती हैं। परन्तु मनु का अभिप्राय यह है कि अग्निद्वारा भड़काया हुआ वाण, स्पष्ट है कि यहां भी आग्नेयास्त्र से तोप बन्दूक का ही अभिप्राय है। शर और वाण का अभिप्राय केवल तीर तक ही नहीं है किन्तु प्रत्येक शस्त्र या अस्त्र, वाण कहला सकता है। इस लिये शुक्र नीति में नालीक के प्रकरण में भी गोली को वाण के नाम से भी कहा गया है।

२३—बहुतों का मत है कि भारत में अपनी विद्या को छिपा कर रखने की बहुत आदत थी अतः इस विषय पर बहुत न्यून पुस्तकें हैं। रामायण महाभारत में इतने शस्त्रों का नाम आता है। परन्तु बनाने आदि का वर्णन नहीं इत्यादि।

वे आक्षेप सब ठीक हैं, परन्तु तभी तक जब तक कि वह संस्कृत साहित्य के प्रकार को तथा उद्देश्य को देखले। संस्कृत साहित्य भण्डार के भण्डारियों का यह उद्देश्य नहीं था कि लोकों का संहार किया जाय या उनको नृशंस या छली बनाकर पाप के राज्य में फंसाया जाय परन्तु उनका उद्देश्य सब को धार्मिक प्रेम पूर्वक रहने वाले भाई बनाना तथा प्रसन्न जीवन वाले और शास्त्रनिष्ठ सदाचारी बनाने का था। अतएव पाप और नृशंसता की ओर ले जाने वाले साधनों की ओर शिक्षाओं की जान के प्रजा के हित के लिये उपेक्षा की न कि छिपाया। क्षात्रधर्म का स्मरण करते हुए उस विषय पर विद्या का प्रकाश करते हुये शास्त्रकारों ने कुछ भी छुपा नहीं रखा। आश्चर्य की बात है कि रामायण में या महाभारत में किस प्रकार शस्त्रों के निर्माण का प्रकरण कहा जाता वहां तो काव्य लिखा जा रहा है धर्मोपदेश देने के उद्देश्य से, फिर नृशंसता का प्रकरण कैसे छेड़ा जाता। शेष महाभारत के "द्वितीय प्रणेता वैशम्पायन ने महाभारत के अवसर पर महाभारत की कथा कही। परन्तु नीति के या राजधर्म या क्षत्रीय धर्म के प्रकरण में दिल खोल के अनेक अद्भुत अद्भुत शस्त्रों का भी वर्णन किया है। इस में कोई बात छिपा नहीं रखी। यह बात अवश्य है कि सम्प्रदायों ने अपने २ अद्भुत रहस्य एक दूसरे से अवश्य गुप्त रखने की कोशिश

की है। इस पर भी हमें कोसना नहीं चाहिये क्योंकि वर्त्तमान में बहुत सी पुस्तकों का प्रकाशन केवल रुपया कमाने के लिये होता है न कि विद्या के प्रसार के लिये परन्तु पहले ऐसा कोई प्रलोभन न था। पहले जमाने में पात्रापात्र का विवेक अवश्य किया जाता था।

२४—शेष रहा नवीन आविष्कार वर्त्तमान में भी क्या जातीय रहस्य परस्पर छिपाये नहीं जाते। अवश्य छिपाये जाते हैं यदि यही भाव पहिले भी हो तो क्या आश्चर्य है? शास्त्र के प्रतिपादन में वास्तव में ग्रन्थकार ने कोई भी रहस्य छिपा नहीं रखा। विश्वामित्र का धनुर्वेद, शार्ङ्ग पाणि का धनुर्वेद तथा अग्निपुराणोक्त धनुर्विद्या के यह सिद्ध नमूने हैं इस बात के कि उन्होंने अपनी विद्या यत्र तत्र बड़ी स्पष्टता से लिखी है।

२५—सब से पहिले यह विद्या च्यवन के पुत्र और्वने सागर को सिखाई। इसी के बल पर उसने उस राज्य को पाया जिसको कि उसके पिता बाहू ने खो दिया था। महाभारत के अनुसार अग्नि के पुत्र अग्निवेश ने द्रोण भारद्वाज को सिखाया।

२६—इसी के आश्चर्य जनक उदाहरण हमें मूर्त्ति आदिकों में भी मिलते हैं।

(१) मदुरा ज़िला में रामचन्द्र के बहुत उत्तर में तिरूपल्लनी के मन्दिर में पत्थर के बने मण्डप के बाहरी दृश्य में ही कतिपय छोटी २ बन्दूकें लिये हुए सिपाहियों की मूर्तियां बनी हुई हैं। उनकी पोशाक भी विचित्र हैं। वे पेटी पहने

हुई हैं और पेटी में कुछ घन्टियां सी देखती हैं। सिर पर विचित्र टोपी है, और पैरों में दक्षिणी जूतियां हैं। *

(२) कुम्भकोण प्रदेश में शार्ङ्गपाणि का मन्दिर है। यह बहुत ऊंचा है इसमें ११ मंजिले हैं। सामने के दरवाजे के बाईं ओर पांचवीं मंजिल पर एक राजा की तसबीर है। वहां सेना से घिरे एक राजा की तसवीर है जिसमें उसके हाथ में एक अस्त्र पिस्तौल के समान दीख पड़ता है।

(३) कांजीवरम में एक प्रसिद्ध मण्डप है इसका नाम शतस्तम्भ मण्डप या नुतिकाल मण्डप है। इसको कोटि कम्पादान ताताचार्य नाम के महाधनी ने बनाया था। इसके पूर्व और पश्चिम में १२ थम्भे तथा ८ खम्भे उत्तर और दक्षिण में हैं।

उत्तर के ४ थे खम्भे में दो सिपाहियों का परस्पर युद्ध दिखाया है। एक घोड़े पर चढ़ा है, और दूसरा पैदल अपनी बन्दूक का निशाना साध रहा है। इस मण्डप का निर्माणकाल १२६४ ईसवी है।

२७—इसके अतिरिक्त सीसे की गोली से मारना वेद भगवान् तक में आया है। इसके सामने सब अर्वाचीन हैं। बस वेद भगवान् सब से पुराना है। इस में लिखा है कि "सीसे द्वारा मारने के अस्त्र का वरुण ने उपदेश दिया, सीसे के लिए ही अग्नि ने उपदेश दिया, सीसा ही इन्द्र देवता ने दिया यह शत्रु को मारने वाला है। यदि शत्रु हमारी गौओं को मारता है या यदि घोड़ों को मारता है, यदि शत्रु

---

* ज़िला तंजोर

हमारे पशुओं को मारता है तो उस शत्रु को हम भी सीसे से वेधते हैं जिस से वह हमारे वीर पुरुषों को न मार सके [५] ।"

वेद भगवान् की साक्षी ने तो इस आविष्कार को १ अरब वर्ष पुराना सिद्ध कर दिया।

इससे ऊंचा चढ़कर क्या प्रमाण दूं। इसी को अन्तिम मंगल समझ कर इस परिच्छेद की इति श्री करता हूँ।

इति द्वितीय प्रकरणम्

तृतीय प्रकरण

शस्त्र तथा अस्त्र (१)

(स्मृति ग्रन्थ तथा नीति शास्त्र)

१ प्रथम प्रकरणों में हमने पाठकों को आग्नेयास्त्र का इतिहास पौरस्त्य पाश्चात्य दोनों ओर का सुनाया। अब पाठकों को सामान्यतः शस्त्र तथा अस्त्र दोनों के विषय में प्राचीन

---

[५] सीसाय अध्याह वरुणः सीसा याग्नि रूपावति।
सीसं म इन्द्र प्रायच्छत् तदङ्ग यातु चातनम् । २ ।
यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषं ॥
तं त्वा सीसे न विध्यामो यथा नो सो अवीरहा ।४।
[अथर्ववेद, काण्ड १, सूक्त १६]

(१) उत्तमं मान्त्रिकास्त्रेण, नालिकास्त्रेण मध्यमम्
शस्त्रैः कनिष्ठैः युद्धं तु बाहुयुद्धं ततोऽधमम् ॥ ३३४ ॥
[शुक्रनीति, अ० ४]

ग्रन्थों के आधार पर बतायेंगे कि किस प्रकार शस्त्रास्त्र विद्या सिखाई जाती थी क्या सिखाई जाती थी, कितनी उन्नति थी इत्यादि, प्रथम हम नीति ग्रन्थों की आलोचना करेंगे और फिर अन्य स्मृतियों की।

शुक्राचार्य

आग्नेयास्त्र का प्रताप यद्यपि बहुत है पर फिर भी हमारे प्राचीन विद्वानों की दृष्टि में मध्यमास्त्र हैं। शुक्राचार्य लिखते हैं कि अस्त्र शस्त्र की तीन श्रेणियां हैं। एक मन्त्रिकास्त्र, दूसरा नालिकास्त्र और तीसरा शस्त्र और उस से भी उतर कर केवल बाहुएं। इन्हीं साधनों से युद्ध किया जाता है। इस में उत्तम साधन मान्त्रिकास्त्र है। मध्यम साधन नालिकास्त्र। शस्त्र तीसरे दर्जे का कनिष्ठ साधन है। उससे भी हीन बाहु युद्ध।

"मन्त्र से शक्ति या बाणादि के फेंकने से शत्रु का नाश करना मान्त्रिकास्त्र युद्ध कहाता है। नली में अग्नि चूर्ण या बारूद डालकर अपने लक्ष्य पर गोले का फेंकना यह नालि कास्त्र का युद्ध कहाता है इसमें शत्रु को बहुत भय होता है। भाले आदि शस्त्रों से शत्रुओं का नाश करना शस्त्र युद्ध कहता है। यह युद्ध नालिकास्त्र या तोप बन्दूक के न होने पर किया जाता है।"*

---

* मान्त्रिकास्त्रेण तद्युद्धं सर्व युद्धोत्तमं स्मृतम् ।३३५॥
नालाग्नि चूर्ण संयोगात् लक्ष्येगोलनिपातनम् ॥
नालिकास्त्रेण तद्युद्धं महात्रासकर रिपोः ॥ ३३६ ॥
कुन्तादिशास्त्र संघातैः, रिपूणांनाशनं च यत् ॥
शस्त्र युद्धं तु तज्ज्ञेयं नानास्त्राभावतः सदा ॥ ३३७ ॥
शु क्र०, अ० ४ । क० ७')

इससे पता लगता है कि तोप बन्दूकों का युद्ध भी बहुत होता था परन्तु जब यह साधन न रहता था तब बाधित हो कर तीसरे प्रकार के शस्त्रों द्वारा ही लड़ना पड़ता था। कुछ काल तक इस दृश्य की कल्पना करके वर्त्तमान युद्ध से तुलना करें तो पाठकों को पता लग जावेगा कि कितना चमत्कार पूर्व काल में हो चुका था बल्कि मन्त्रास्त्र का आविष्कार अभी पाश्चात्यों के भी उन्नति की सीढ़ी में नहीं है।

२—इसी प्रकार शस्त्रों की व्याख्या करते हुए शुक्रचार्य कहते हैं कि "जिस को फेंका जाय वह अस्त्र कहाता है। चाहे वह यन्त्र से या आग से फेंका जावे। और शेष सब शस्त्र हैं। जैसे तलवार भाले आदि। अस्त्र दो प्रकार का होता है एक मान्त्रिक दूसरा नालिक। मान्त्रिक अस्त्र के न होने पर नालिक अस्त्र को धारण करे। और साथ ही अस्त्रों को भी रखे। अस्त्र या शस्त्र के छोटे बड़े होने या धार में भेद होने से नामों में भी भेद हो जाता है। *

३—नालिक दो प्रकार का होता है। एक बृहत बड़ा दूसरा क्षुद्र छोटा।

पदाति और अश्वरोही लोग लघु नालिक को काम में लाते हैं जो खतरेड़ा टेढ़ा होता है। जिसके एक सिरे पर

---

* अस्यते क्षिप्यते यत्तु मन्त्रयन्त्राग्निभिश्च तत्। १७१।
अस्त्रं यदन्यतः शस्त्रमसि-कुन्तादिकञ्चयत्॥
अस्त्रं तु द्विविधं ज्ञेयं नालिकं मान्त्रिकं तथा॥ १९२॥
यदा तु मान्त्रिकं नास्ति नालिकं तत्र धारयेत्।
सह शस्त्रेण नृपति विजयार्थं लघु दीर्घाकार धारा भेदी शस्त्रास्त्र नामकम् ।१९४। शुक्र० अ० ४ प्र० ७।

छेद होता है जिसमें २½ हाथ की नाली होती है। उस नाली के जड़ और अग्र भाग पर निशाना साधने के लिए तिल-विन्दु या मक्खी लगी होती है। यन्त्र या घोड़ा के लगने से अग्नि पैदा होती है। बारूद को धारण करने वाला उसमें कान सा लगा होता है। उसके मूल में अच्छा मज़बूत काठ का दस्ता होता है। नाली का छिद्र एक अंगुल होता है। बीच में उसके बारूद भरा जाता है। इस कार्य के लिए उसमें एक सिलाख पक्के लोहे की भी लगी रहती है। यह लघु नालिक कहाता है। ‡

"नल जितना भी पक्का तथा मोटा और लम्बा होगा उतना ही अधिक चोट करने वाला होगा। मूल या आधार में लगे कील या दस्ते को घुमाने से ठीक निशाने पर बैठने वाला होता है। जो गाड़ी आदि पर रख कर दूसरे स्थान पर ले जाने योग्य होता है वह बृहन्नालिक या तोप कहाता है।" ×

---

‡ नालिकं द्विविधं ज्ञेयं बृहत्क्षुद्रविभेदतः ॥ १९५
तिर्यगूर्ध्व च्छिद्रमूलं नालं पञ्चवितस्तिकं ॥
मूलाग्रयोर्लक्ष्यभेदि, तिलविन्दु युतंसदा ॥ १९६ ॥
यन्त्राघाताग्निकृद् ग्रावचूर्णाधृक्कर्ण मूलकम् ॥
सुकाष्ठोपाङ्ग बुध्नञ्च मध्याङ्गुलविलान्तरम् ॥ १९७ ॥
स्वान्तेऽग्नि चूर्ण संधात सलाकासंयुतं दृढम्
लघुनालिकं मध्येसत् प्रधार्यं पत्तिसादिभिः ॥ १९८ ॥
(शुक्र० अ० ४, प्रक० ७)

× यथयथातुत्वक्सारं यथास्थूलविलान्तरं ॥
यथादीर्घं बृहन्नालं दूरभेदि तथा तथा ॥ १९९ ॥
मूलकीलभ्र माल्लक्ष्य समसन्धानभाजियत् ॥

४—बारूद—बारूद बनाने की विधि शुक्राचार्य संक्षेप से लिखते हैं कि पांच भाग सौंचल का नमक, एक भाग गन्धक, धूएं को बन्द करके जलाये हुए हुनीथोर आदि का कोयला एक भाग शुद्ध २ लेकर पीसकर चूरा करके मिलाकर थोर लहसुन और आक के रस से पुट दे दे, और धूप में सुखा लेवे और शक्कर की तरह पीस लेवे तो अग्निचूर्ण तैयार हो जाता है। या सौंचल के ३ भाग या चार भाग शेष गन्धक और कोयला पूर्व के अनुसार मिलाकर नालीकास्त्र या बन्दूक के लिये बारूद तैयार किया जावे। छोटी नालीक या बन्दूक के लिए लोह का फोकी गोली या सीसे की या किसी और धातु की गोली का प्रयोग किया जाता है। नालास्त्र तोप भी लोहसार की या अन्य मज़बूत धातु की बनानी चाहिये, और इसके मालिक को चाहिये कि नित्य इसको साफ और सुथरा रखे। *

बृहन्नालिकसंज्ञं तत् काष्ठबुध्नविनिर्मितम् ।।
प्रवाह्यं शकटाद्यैस्तु सुयुक्तं विजय प्रदम् ।। २०० ।।
[शुक्र० अ० ४ । प्रक० ७]

*सुवर्चिलवणात्पञ्च पलानिगन्धकात्पलम् ।
अन्तधूर्मविपक्वार्कस्नुह्यद्यङ्गारतः पलम् ।। २०१ ।।
शुद्धान् संग्राह्य संचूर्ण्य समील्यप्रपुटेन्द्रसैः ।
स्नुह्यर्काणां रसोनस्य शोषयेदातपेनच ।।
पिष्ट्वाशर्करवच्चैतदग्नि चूर्णं भवेत् खलु ।। २०२ ।।
सुवर्चिलवणाद्भागाः षड्वाचत्वार एव वा ।
नालास्त्रार्थाग्निचूर्णेतुगन्धाङ्गारौतुपूर्ववत् ।। २०३ ।।
गोलोलोहमयो गर्भ गुटिकः केवलोऽपिवा ।

५—कोयला, गन्धक, सौंचल, हड़ताल, मनसिल, सिन्दूर, सिग्रीफ़, हिंगुल कान्ती लोह का छील कपूर, लाख, नीली, सरलीणोन्द, सज्जी इत्यादि द्रव्यों को थोड़ा बहुत भागों का अनुपात करके नाना प्रकार के अग्निचूर्ण बनाया करते हैं। चांदनी, फुलझड़ी आदि भी बना लेते हैं।

गोले को अग्नि लगा देने से नाल द्वारा दूर फेकते हैं। तोप को पहले साफ़ करे। फिर बारूद या अग्निचूर्ण डाले फिर गज़ से उसे मूल में ठूंसले, फिर गोली डाले; फिर कान पर थोड़ा सा अग्नि का चूर्ण या बारूद धरके बन्दूक के कान पर वाले चूर्ण में आग लगा देवे और गोली को निशाने पर मारे।*

इस प्रकार शुक्राचार्य ने कितनी स्पष्टता से बन्दूक या बड़ी तोप का पूरा हाल लिख दिया है। इसी अस्त्र को धारण करने वालों को सेना में भर्ती किया है।

सीसस्यलघुनालर्थं ह्यन्यधातुभवोपिवा ।। २०४ ।।
लोहसारमयं वापि नालास्त्रं त्वन्यधातुजम् ।
नित्यसम्मार्जनस्वच्छ मस्त्रपातिभिरावृतम् ।। २०५ ।। शुक्र०

* अङ्गारस्यैवगन्धस्य सुवर्चिलवणस्यच ।।
शिलाया हरितालस्य तथासीममलस्यच ।।
हिंगुलस्य तथा कान्त रजसः कर्पूरस्य च ।। २०७ ।।
जतोर्नील्याश्चसरलनिर्यासस्य तथैव च ।।
समन्यूनाधिकैरशैरग्निचूर्णान्यनेकशः ।। २०८ ।।
कल्पयन्ति चतद्विद्याश्चन्द्रिका आदिमन्तिच ।।
क्षिपन्ति चाग्निसंयोगाद्गोलं लक्ष्ये सुनालगम् ।। २०९ ।।
नालास्त्रं शोधयेदादौ दध्यात्तत्राग्नि चूर्णकम् ।।
निवेशये त्तद्दण्डेन नालमूले यथादृढम् ।। २१० ।।

६—शुक्राचार्य के नियम के अनुसार बनी हुई बन्दूकें अभी तक जयपुर तथा जोधपुर की देशी रियासतों में घर २ वर्त्ती जाती हैं। उसी प्रकार की बड़ी तोप भी बहुत से पुराने किलों में पड़ी हुई मिलती हैं। जयपुर को जाते हुए बी० बी० एण्ड० सी० आई० रेलवे की सड़क पर मलाखाड़ के स्टेशन के पास एक किला है उसमें बृहदाकार तोप पड़ी है जो कम से कम आठ या नौ हाथ की है उसका मुख भी एक फिट से कम चौड़ा नहीं है। उसके बृहदाकार को देख कर भय प्रतीत होता है। उसका पिछला भाग इतना चौड़ा है कि लम्बे से लम्बे हाथ वालों के भी हाथों के घेरे में नहीं आसकता।

कहते हैं कि वह तोप किले के शिखर पर रखी थी। उसको देखकर ७ सदी पहले की कारीगरी का एक नमूना का पता लग जाता है। इसी प्रकार पुराने फैशन की छोटी मोटी तोपें और भी अन्य जगह दर्शनीय रूप में रखी हुई हैं। लाहौर में अद्भुतालय या मूजियम के सामने पीतल की बनी भङ्गियों की तोप है। रुड़की में तोपखाने के पास छोटी सी लोहे की तोप है। दिल्ली के किले पर कुछ एक पहियेदार लोहे की तोपें पड़ी

ततः सुगोलकंदस्घात् कर्णं ऽग्निचूर्णकम्।
कर्णं चूर्णानिदानेन गोले लक्ष्येनिपातयेत् ॥ २१ ॥

(शुक्र० २,७)

लघु नालिकयुक्तानां पदातीनां शतत्रयम् ॥ २२ ॥
अशात्यश्वान् रथं चैकं बृहन्नालद्वयं तथा ॥ २३ ॥

[शुक्र अ० ४, ७]

हैं। भरतपुर के किले में कतिपय पुराने चाल की तोपें तथा एक बृहत् तोप पड़ी है। इसी प्रकार स्थान २ में तोपों की सत्ता पायी जाती है। इससे हम इस परिणाम पर भी पहुंच जाते हैं कि प्राचीन काल में इसके बनाने के लिए भी विशेष चतुर व्यक्ति जो इसी कार्य में ही निपुण होते थे जैसा कि शुक्राचार्य राजा को किन २ पुरुषों का संग्राहक रहना चाहिए ऐसों को गणना करते हुए ऐसे व्यक्तियों की गणना करते हैं जो तोप में गोला रखकर छोड़ने तथा ठीक लक्ष्य पर मारने में चतुर हों और जो छोटी बड़ी तोपें और बन्दूकें बारूद बाण गोला तलवार आदि बनाने में सिद्ध-हस्त हों। (१)

इस प्रकार शुक्राचार्य प्रतिपादित आग्नेयास्त्र सम्बधी विज्ञान हम दिखा चुके। अब इसी आचार्य के कहे अन्य शस्त्रों के बारे में भी संक्षेप से लिखते हैं।

६—१ धनुषबाणः—धनुष की डोरी से लगा हुआ बाण दो हाथ लम्बा होता है। (२)

---

(१) महानालिकयन्त्रस्यगोले लक्ष्यविभेदिनः ॥
लघुयन्त्राग्नेयचूर्ण बाण गोलासिकारिणः ॥ १९६ ॥
योग्याः कार्यानुरूपतः ॥ २०४ ॥

[शुक्र, अ० २,]

(२) लक्ष्य भेदीयथा बाणो धनुर्ज्याविनियोजितः ।
भवेत् तथा तु सन्धाय हस्तरत्नशिलीमुखः ॥ २२१ ॥

[शुक्र, अ० ४ प्रक ७]

२ गदाः—आठ कोनों वाली छाती तक ऊंची होती है। नीचे का तला बड़ा होता है। (३)

३ पट्टीशः—फेंकने वालों के बराबर लम्बा होता है। हाथ में उसका हत्था होता है। दोधारा होता है। (४)

४ खड्गः—कुछ गोल एक तरफ धार, चार अंगुल चौड़ा छुरे की न्याई तेज धार वाला नाभि तक लम्बा, मजबूत मूंठ वाला, चान्द की तरह चमकने वाला, खड्ग होता है। (५)

५ प्रासः—चार हाथ लम्बा छुरे की नायी तेज धार वाला। (६)

६ कुन्तः—१० हाथ लम्बा—हलकी तरह के फल से युक्त, नीचे से छुरे की तरह भाला होता है। (७)

७ चक्रः—छुरे के सदृश तेज़धार वाला गोल छै हाथ परिधि का होता है। बीच में नाभि लगी होती है (८)

८ पाशः—तीन हाथ का दण्डा, तीन फलों की चोटी वाला, और उसमें एक लोहे की तार लगी हो। (९)

---

(३) अष्टाश्रापृथुबुध्ना गदा हृदय सम्मित्ताः ।। २१२ ॥
(४) पट्टीशः स्वसमो हस्त बुध्नश्चोभयतो मुखः ।। २१३ ।।
(५) ईश श्चक्रधरो विस्तारे चतुरंगुलः ।
क्षुरप्रान्तो नाभिसमो दृढ़ मुष्टिः सुचन्द्ररुक् ।। खड्ग २१४ ॥ ॥
(६) प्रासश्चतुर्ह स्तदण्ड बुध्नःक्षु राननः ।। २१५ ।।
(७) दश हस्तमितः कुन्तः फालाग्रः शङ्कु बु ध्नकः ।। २१ ।
(८) चक्रंषड् हस्तपरिधि क्षु रप्रान्तसुनाभियुक् ।।
(९) त्रिहस्तस्त्रिशिखो, लोहरज्जुः सुवाशकः।।॥ २१६ ।।

६ कवचः—उल्लू के पंजे को नायी मोटे पत्ते का लोहे का बना हुआ दृढ़ शिरस्त्राण युक्त बनाया जाता है (१०)

७—शुक्राचार्य की शुक्रनीति में केवल शस्त्र तथा अस्त्र के विषय में इतना मात्र उपलब्ध होता है। शेष इन शस्त्रों को धारण करने वाले किस प्रकार इनका उपयोग करते थे इस विषय में युद्ध तथा व्यूह प्रकरण में लिखेंगे।

कामन्दक नीति

कामन्दकी नीति शास्त्र सार के कर्त्ता कामन्दकाचार्य ने भी नालिकास्त्रादि तथा अन्य विचित्र और भयावह मायाओं और आसुरी उपयोगों को दर्शाया है। जिससे प्राचीन काल में आग्नेय विद्या का अच्छा परिचय प्रमाणित होता है।

प्रमाद करते राजा को नौकर नालिकादि अस्त्रों (बन्दूक) के शब्दों से सचेत कर दिया करें।

माया कल्पना बताते हुए कामन्दक लिखते हैं:—

यथा काम रूप धारण करना शस्त्रों अस्त्रों, और प्रस्तरों और जल बरसाना अन्धकार कर देना मेघों को उमड़ा देना ये अमानुषी माया है। (११)

मेघों को उमड़ाना अन्धकार करवा देना जल वृष्टि और अग्नि वृष्टि आदि का अद्भुत चमत्कार करना आदि इन्द्रजाल

---

(१०) गोधूम सम्मितस्थूलपत्रं लोहमयं दृढ़म् ॥
कवचं सशिरस्त्राण मूर्ध्व काय विशोभनम् ॥ २१७ ॥
(शुक्र अ० ४, ७)

(११) कामतो रूपधारित्वं शास्त्रस्त्रास्तु वर्षणम् ।
तमोऽनिलोचलोमेघाः इतिमायाह्यमानुषी ॥५५॥
। कामन्द अ० १८ ।

भी राजा अपने शत्रु को डराने के प्रयोजन से किया करे। १२

इति तृतीय प्रकरण

चतुर्थ प्रकरण

शस्त्र तथा अस्त्र

(पुराण साहित्य)

गत प्रकरणों में हमने शुक्राचार्य तथा अथर्ववेद के आधार पर आग्नेयास्त्र की अत्यन्त प्राचीनता सिद्ध की थी। अब हमारा कर्त्तव्य प्राचीनता दर्शाने का पूर्ण होगया परन्तु उन्नति मात्र दिखाना अग्रिम लेख माला का उद्देश्य है। इस प्रकरण में पुराण साहित्य में प्राप्त होने वाला शस्त्र तथा अस्त्र विषयक विज्ञान उद्धृत किया जायगा।

पुराणों के कर्त्ता व्यास जी हों या अर्वाचीन हों इस समस्या का यहां कुछ भी विचार न करके केवल पुराणों का उतरता हुआ समय बौद्ध काल के पश्चात् का ही मान लेना शंका मुक्त है। आग्नेय अस्त्र का महाभयंकर रूप अभी तक तोप ही आविष्कृत है। शेष सब इसी के रूप रूपान्तर हैं। संस्कृत में शतघ्नी इसी तोप का वाचक है। इसका वर्णन मत्स्य पुराण ने राजधर्म प्रकरण में दुर्गनिर्माण बताते हुए इतना ही किया है, "दुर्ग के चारों ओर परिखा या खाईं होवे, कोट और अटारियां हों, और तोप आदि मुख्य यन्त्र सैंकड़ों लगे हों *"

(१२) मेघान्धकार वृष्ट्यग्नि पर्वताद्भुतदर्शनम्।
इतीन्द्रजाल द्वित्यताभी त्यार्थमुपकल्पयेत् ॥५६॥

* दुर्गं च परिखोपेतं वप्राट्टालक संयुतम्।
शतघ्नीयन्त्र मुख्यैश्च शतशश्च समावृतम्।

बस इतने मात्र से शतघ्नी का परिचय मिलता है। अग्नि पुराण में अग्नि ने शस्त्रास्त्रों का उपदेश करते हुए सम्पूर्ण धनुर्वेद का उपदेश किया है। इसका विज्ञान विशेष ध्यान देने योग्य है।

शस्त्र तथा अस्त्रों के इस पुराण में ४ प्रकार बतायें हैं प्रथम यन्त्र मुक्त, द्वितीय पाणिमुक्त, तृतीय मुक्त संधारित चतुर्थ अमुक्त ; पांचवां युद्ध का हथियार बाहुयें हैं। इन हथियारों में एक शस्त्र तथा दूसरे अस्त्र कहाने से दो प्रकार के हैं। फिर इनमें भी दो भेद हैं। एक ऋजु अर्थात् सरल दूसरे माया वाले अर्थात् कुटिल *

यन्त्र मुक्त बाण वह होता है जो क्षेपणी व चाप या धनुष और यन्त्र (कला = मशीन) से फेंका जाता है। शिला, तोमर आदि शस्त्र पाणिमुक्त कहाते हैं। जिस शस्त्र को ऐसा फेंके जो फिर भी अपने वश किया जा सके, वह मुक्त संधारित कहाता है। तलवार आदि शस्त्र अमुक्त कहाते हैं क्योंकि

---

* यन्त्र मुक्तं पाणि मुक्तं मुक्त संधारितं तथा
अमुक्तं बाहु युद्धञ्च पञ्चधा तत्प्रकीर्त्तितम् ।
तत्र शस्त्रास्त्र सम्पत्त्या द्विविधं परि कीर्त्तितम्
ऋजुमाया विभेदेन भूयो द्विविधमुचते
क्षेपणीचापयन्त्राद्यैर्यन्त्रमुक्तं प्रकीर्त्तितम्
शिलातोमर प्रासाद्यं पाणिमुक्तं प्रकीर्त्तितम्
मुक्तसंधारितंज्ञेयं प्रासाद्यमपि यद्भवेत्
खड्गादिकममुक्तञ्च नियुद्धं विगतायुधम्

इनको कभी भी छोड़ा नहीं जाता। प्रत्युत सदा हाथ ही में रखना पड़ता है।

इन सब युद्धों में काम आने वाले हथियारों में श्रेष्ठ अस्त्र धनुष हैं, मध्य श्रणी के शस्त्र प्रास, तोमर आदि हैं तीसरी श्रेणी अर्थात् निकृष्ट पद के खड्गआदि हैं। और उनसे भी अधम श्रेणी बाहु हैं।१ इसी के अनुकूल युद्धों की ऊंच नीच भी समझनी चाहिये। निम्नलिखित शस्त्रास्त्रों का अग्नि पुराण में उल्लेख है जिनकी चालों के व गतियों के प्रकार लिखे हैं इनके स्वरूप व आकार के विषय में पुराणकार ने कोई परिचय नहीं दिया। अस्त्र शस्त्रों के नाम ये हैं:—

(१) खड्गचर्म (२) पाश (३) शूल (४) तोमर (६) गदा, (७) परशु (८) मुद्गर, (९) भिन्दपाल, (१०) लगुड़, (११) पट्टीश, (१२) कृपाण (१३) क्षेपणी,

क्षेपणी के विषय में यन्त्र को सम्बन्ध सूचित किया है। सब पुराणों में से आग्नेय पुराण का धनुर्वेद सब से श्रेष्ठ और उन्नत है सो पाठकों के सामने धर दिया।

अगले प्रकरण में हम वैशम्पायनकृत नीति प्रकाशिका के आधार पर अद्भुत चमत्कार पाठकों के समक्ष रखना चाहते हैं।

इति चतुर्थ प्रकरण

१ धनुःश्रेष्ठानि युद्धानि प्रासमधनि तानि च
तानिखड्गजघन्यानि बाहुप्रत्यवराणि च

———

पञ्चम प्रकरण

अस्त्र तथा शस्त्र

नीति प्रकाशिका

१—शस्त्रास्त्र विषय में विस्तार से कहने वाली सब से प्राचीन तथा सब से अधिक उन्नति की पराकाष्ठा की घोषणा करने वाली वैशम्पायनकृत नीति प्रकाशिका ही है। वर्त्तमान में अभी तक यह ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ है। परन्तु एक १८८० ई० की छपी Weapons, Army Organisation and Political Maxim of the Ancient Hindus" नामक पुस्तक में हमें कुछेक उद्धरण प्राप्त हुए हैं, उन्हीं के आधार पर हमारा यह प्रयत्न है। इसके लिये हम उपरोक्त पुस्तक के प्रणेता महाशय Gustovre oppert *P.* H. D. को बहुत धन्यवाद देते हैं। उन्होंने इस विषय में बहुत सा अनुसंधान न करके प्राचीन गौरव की रक्षा की है। अस्तु।

२—नीति प्रकाशिका के प्रथम प्रकरण में ही शस्त्र व अस्त्रों की उत्पत्ति का तथा उन्नति का क्रम इस प्रकार दिखलाया है।

"प्रजापति के मानस पुत्र कृशाश्व की दो स्त्रियां जया और सुप्रभा थी। ये दोनों दक्ष की कन्यायें थीं। जया को वर प्राप्त होने के कारण मद आगया और इससे उसने शस्त्र और अस्त्रों को पैदा किया। दूसरी स्त्री ने दश पुत्र उत्पन्न किये। उन पुत्रों का नाम संहार था वे बड़े दुर्धर्ष और दुराक्रमणीय व बलवान थे। शस्त्रों के साथ ही मन्त्र और देवताओं का

संयोग हो जाने से शस्त्र ही अस्त्र वन गये ।*

कुछ ध्यान देने से प्रतीत होता है कि यह अलंकार रूप में धनुर्वेद की उत्पत्ति का क्रम दिया गया है। कृशाश्व स्वतः क्रोध उसकी दो पत्नी जया अर्थात् विजय करने की इच्छा, और सुप्रभा अर्थात् लक्ष्मी प्राप्त करने की उत्कण्ठा ये दो पत्नी हैं। ये दोनों दक्ष अर्थात् कर्मप्रधानमय गुण की कन्याएं हैं। जया या विजिगीषा ने अस्त्र शस्त्रों को पैदा किया अर्थात् वनाया—प्रताप या लक्ष्मी प्राप्त करके प्रतिष्ठित वनने की इच्छा ने संहार अर्थात् जन-संहार करवाया। यह इस कथा का व्यञ्जनार्थ सूचित होता है। उन्हीं शस्त्रों को विचार पूर्वक यन्त्र कला के साथ जोड़ देने तथा अग्नि, वायु आदि पञ्चभूतों की गुप्त शक्ति द्वारा प्रयोग करने से उनका नाम अस्त्र हो गया। यह क्रमिक उन्नति की कैसी स्पष्ट व्याख्या है।

३—वैशम्पायन के मत के अनुसार अस्त्र शस्त्र चार प्रकार के हैं प्रथम मुक्त, द्वितीय अमुक्त तृतीय मुक्तामुक्त, यही भेद अग्नि पुराण में मुक्त संधारित कहा गया है। चौथा मन्त्र मुक्त।

---

* कृशाश्वो मानसः पुत्रो द्वे जाये तस्य सम्मते ।
जया च सुप्रभाचैव दक्षकन्ये महामते ॥ ४५
जया लब्ध वरामत्तो शस्त्राण्यस्त्राण्यं सूनवै ।
पञ्चाद्दशपराचैव तावत्पुत्रानजीजनत् । ४५
संहारान्नाम दुर्धर्षान् दुराक्रामान् वलीयसः ;
मन्त्रदैवत संयोगात् शस्त्राण्यस्त्रत्वमाप्नुवन् ॥ ५४ ॥
(नी० प्र०, अ० १)

बाणादि मुक्त है, खड्गादि अमुक्त, उपसंहार वाले अस्त्र मुक्तामुक्त कहाते हैं और उपसंहार रहित अस्त्र मुक्त कहाते हैं जैसे मन्त्र द्वारा शक्ति आदि।

यही चार प्रकार के अस्त्र धनुर्वेद के चार पैर कहे जाते हैं। इन चार पादों से धनुर्वेद स्थिर रह कर संसार में प्रख्यात है।*

४—मुनि वैशम्पायन शस्त्रों का व अस्त्रों का वर्णन जिस प्रकार करते हैं वैसा ही हम यहां पृथक् २ करके उद्धृत करते हैं :—

धनुषः—÷ मोटी गर्दन, पतला सिर, बीच का छोटा: पीठ अच्छी, चार किष्कु (हाथ) परिमाण वाला, तीन स्थानों पर [दोनों कोटि और मध्य में] झुका हुआ लम्बी जीव या ज्या

मुक्तं चैवाह्यमुक्तं च मुक्तामुक्तमतः परम्।
मन्त्रमुक्तं च चत्वारि धनुर्वेदपदानि वै ॥ ११
मुक्तंबाणादि विज्ञेयं खड्गादिकममुक्तकम्।
सोप संहारमस्त्रं तु मुक्तामुक्तमुदाहृतं ॥ १२
उपसंहार रहितं मन्त्रमुक्तमिहोच्यते।
चतुर्भिरेभिः पादैस्तु धनुर्वेदः प्रकाशते ॥ १३
[नी० प्र० अ० २]

÷ पृथुग्रीवं सूक्ष्मशिरास्तनुमध्यं सुपृष्ठवत्।
चतुष्किष्कु [हस्त] प्रांशुदेहं भीषण दीर्घजीवकम् ॥ ८ ॥
दंष्ट्राकराल वदनं रक्ताभं घर घरा स्वनम् ॥
अन्त्र मालापरिच्छिन्नम् लेलिहानं चसृक्किणी ॥ ९ ॥
[नी० प्र० अ० २]

वाला दांढों से भीषण मुख वाला, लालरंग का, घर घर आवाज़ करने वाला, आंतों की माला पहने हुये धनुष कहाता है। कैसा सालङ्कार वर्णन है। इसी के वर्णन में वेद-भगवान् धनुष का "गोभिः सन्नद्ध" ऐसा विशेषण देते हैं। अर्थात् इसपर पशु की आंत की बनी तांत लिपटी रहनी है। ज्या इसकी जीभ दोनों कोटियां इसके होंट हैं। ज्या या डोरी से यह दोनों होठों को मानों चाटता प्रतीत होता है) डोरी टनकारने से घर घर घर घर आवाज़ करता है। लाल रोगन से इसे रंगा जाता है।

इस धनुष की इतनी चालें * हैं (१) लक्ष्य का प्रतिसंधान, (२) आकर्षण, (३) विकर्षण, (४) पर्याकर्षण, (५) अनुकर्षण, (६) मण्डलीकरण, (७) पूरण, (८) स्थारण, (९) धूनन, (१०) भ्रामण, (११) आसन्नपात, (१२) दूरपात, (१३) पृष्ठपात, (१४) मध्यमपात, ये चौदह गतियें हैं।

२—इषु या बाणः-इषु नीले रंग का, बड़ा लम्बा शरीर दो हाथ ऊंचा परिधि में एक अंगुली, का होता है इस की दो ही गतियें हैं भ्रामण और क्षेपण ×।

---

* लक्ष्यस्य प्रतिसन्धानमाकर्षणं विकर्षणे
पर्याकर्षानुकर्षौच मण्डलीकरणं तथा ॥ १९ ॥
आसन्नदूरपातौ च पृष्ठमध्यमपातने।
एतानि वल्गितान्याहुश्चतुर्दशधनुर्विदः ॥ २० ॥
[नी० प्र० अ० ४०]

× इषुर्नील बृहद्देहो द्विहस्तोत्सेधसंहतः
परिध्याचाङ्गुलिमितोऽनल्पमात्रगतिस्तुसः ॥ २८ ॥

३—भिन्दिपाल‡ :—भिन्दिपाल टेढ़ा शरीर, झुका हुआ सिरा, बड़ा सिर, एक हाथ ऊंचा, हाथ भर के घेरेवाला होता है। इस को बाया पैर आगे रखकर तीनवार घुमाकर फैंका जाता है और शत्रु के पैरों पर प्रहार करता है और शत्रु का नाश करता है। इस को पदाति लोग अपने पास रखते हैं।

४—शक्ति—शक्ति दो हाथ ऊंची, टेढ़ी चालवाली, सीधी, तीखे धारवाली भयानक दातों से युक्त, भयंकर, घण्टे के सदृश नाद करने वाली, बड़ी मुट्ठि से जड़ी, दूरजाने वाली, पहाड़ को भी तोड़ डालने वाली, दोनों हाथों से चलाई जाती है। इस से युद्ध में अवश्य विजय होता है। +

इसकी तोलना घुमाना चलाना झुकाना छोड़ना और फाड़ना ये छः गतियां हैं।

भ्रामणं क्षेपणं चेति द्वे गतीस्थूलसम्मने ।। २९ ।।
[नी० प्र० ४]

‡ भिन्दिपालस्तुवक्राङ्गो नम्रशीर्षो बृहच्छिराः ।
हस्तमात्रोत्सेधयुक्तः करसम्मितमण्डलः ।। ३० ।।
विभ्रामणं विसर्गश्च वामपादः पुरःसरन्
पादघातात् रिपुहणोधार्यः पादातमण्डलैः ।। ३१ ।।
(नी० प्र० अ० ४)

+ शक्तिर्हस्तिद्वयोत्सेधातिर्यग्गति रनाकुला—
तीक्ष्ण जीह्वोग्रनखरा घण्टानादभयंकरी ।। ३२ ।।
बृहत्सरुं दूर गमा पर्वतेन्द्रविदारणी
भुजद्वयप्रेरणीया युद्धे जयविधायिनी ।। ३३ ।।
तोलनं भ्रामणं चैव वल्गनं नामनतथा ।।

५—द्रुघण:—टेढ़ी गर्दन और बड़े सिर वाला ५० अंगुल ऊचा मुट्ठी जितना घेरे वाला लोहे का पिण्ड होता है*।

इस की उन्नामन (उठाना), प्रपात (गिराना), स्फोटन (फूटना) दारण (फाड़ देना) ये चार गतियां हैं।

६—तोमर:—काठ का बना हुआ होता है। जिस का सिर लोहे का, गले में घण्टियों का गुच्छा, तीन हाथ ऊंचा, लाल रंग का, नीचे पकड़ने का मुट्ठा होता है। शस्त्रकारों के मत से इसकी उत्थान विनिवृत्ति, और वेधन ये तीन गतियें कही जाती हैं। ÷

७—नालिका:—नालीका या नाड़िका अस्त्र का सरल सूधा देह, पतला शरीर, बीच में जिसके रन्ध्र या छिद्र हो। शत्रु के मर्म को भेद करने वाली, नीले रंग की, द्रोणी चाप के योग्य वाण या गोलियों को फेंकने वाली, होती है इसकी ग्रहण ध्यापन सूए से ठोकना ये तीन गति ये हैं इस नालिका

मोचनं भेदनं चेति पदमार्गाः शक्ति संश्रिताः ॥ ३४ ॥
(नी० प्र० अ० ४)

* द्रुघणः स्त्वयः सचः स्यात् वक्रग्रीवो बृहच्छिराः
पश्चाशदङ्गुल्युत्सेधो मुष्टि संमितमण्डलः ॥ ३६ ॥
उन्नामनं प्रपातं च स्फोटनं दारणं तथा
चत्वार्यं तानिद्रुघणेवल्गितानिश्रितानिवै ॥ ३७ ॥
÷ तोमरः काष्ठकायः स्यात् लोह शीर्षः सुगुच्छवान्
हस्त त्रयोन्नताङ्गश्च रक्त वर्णस्त्ववाग् ग्रहः ॥ ३८ ॥
उत्थानं विनि वृत्तिश्च वेधनं चेतितत्त्रिकम्
वल्गतिशास्त्र तत्वज्ञाः कथयन्ति नाराधिपः ॥ ३९ ॥
(नी० प्र० अ० ४)

के अस्त्र को जान कर योद्धा युद्ध में समीप आते हुए शत्रु को जीत लेता है।*

८—लगुड़ः—पतले पैर, लम्बे मध्यदण्ड और मोटे सिर वाला होता है। इस के अगले भाग में लोहा बंधा होता है। देह छोटा तथा मोटा होता है। सारे शरीर पर दंदाने होते हैं। मज़बूत होता है। और दो हाथ ऊंचा होता है।

उत्तान, पातन, पेषण और पोथन ये चार गतियें होती हैं। +

९—पाशः—बहुत सूक्ष्म अवयवों वाला लोह धातु की तारों से बना, तीन कोणों वाला, एक वितस्ता परिधि से युक्त सीसे के गोलियों से मढ़ा हुआ, होता है।

फैलाना, लपेटना, काटना, ये तीन पाश की गतियां हैं।

१०—चक्रः—चक्र कुण्डल के आकार वाला मध्य में सुन्दर अक्ष से जड़ा हुआ, नीलरंग के पानी के से वर्ण वाला दो

---

* नालिका ऋजुदेहा स्यात् तन्वंगी मध्यरंन्ध्रिका।
मर्मच्छेदकरी नोला द्रोणीचाप शरेरिणो ॥ ४० ॥

ग्रहणध्मापनं चैवस्तुतं चैव गतित्रयम् ॥
तामाश्रितां विदित्वा हु जेताऽसन्नान् रिपून्युधि ॥
नी० प्र० अ० ॥

लगुड़ः सूक्ष्मपादः स्यात् पृथुवंशः स्थूल शीर्षकः।
लोह बद्धाग्रभागश्चह्रस्वदेह सुपीवरः ४२

दन्तकायः दृढ़ाङ्गश्च तथा हस्तद्वयोन्नतः॥
उत्तामनं पातनं चैव पेषणं पोथनं तथा ॥ ४३ ॥

वीता परिधि वाला होता है।

ग्रथन, भ्रामण, क्षेपण, परिकर्त्तन और दलन ये पांच गतियां चक्र की होती हैं।*

११—दन्तकण्टकः—दन्तकण्टक नामक शस्त्र का सारा शरीर लोह कण्टकों से ढका हुआ, आगे से मोटा, पूंछ से पतला, कोयले के रंग वाला, एक बाहु परिमाण का, अच्छी मूंठ वाला-एक डण्डे के सदृश भयङ्कर आंख वाला होता है।

कतिपय भ्रम में पड़ कर यही रूप शतघ्नी का बताते हैं सो सर्वथा अशुद्ध तथा भ्रममूलक है।

पातन, ग्रन्थन ये दो गतियां दन्त कण्टक की होती हैं।+

१२—भुशुण्डी या मुशुण्डीः—भुशुण्डी पड़ी गांठ वाली लम्बेदेह तथा अच्छी मूंठवाली, तीन बाहु परिमाण लम्बी काले सांप के सदृश वर्ण वाली होती है।

यापन और धूरण ये दो गतियें भुशुण्डी की होती हैं। सर्वसाधारण इसको बन्दूक समझते हैं। परन्तु वैशम्पायन

---

* चक्रं तु कुण्डलाकारं अन्तःस्वच्छसमन्वितम् ॥
नीलो खलिल वर्णं तत् प्रादेश द्वयमण्डलं ॥ ४७ ॥

ग्रथनं भ्रामणं चैव क्षेपणं परिकर्त्तनम् ॥
दलनं चेति पञ्चैव गतयश्चक्रसंश्रिताः ॥ ४८ ॥

+दन्तकण्टकनामा तु लोह कण्टक देहवान् ॥
अग्रेपृथुः सूक्ष्मपुच्छश्चाङ्गार सन्निभाकृतिः ॥ ४९ ॥

बाहुन्नतः सुत्सरुश्च दण्डकायोग्रलोचनः ॥
पातनं ग्रथनं चेति द्वे गती दण्डकण्टके ॥ ५० ॥

के इस वर्णन के अनुसार उनका कहना निरर्गल है।*

१३ वज्रः—हेराजन्! जो वज्र अभी तक किसी के उपयोग में नहीं आया, ऐसे वज्र के विषय में मैं तुझसे कहता हूँ। इसमें इतना बल होता है जिस का परिणाम नहीं लगाया जा सकता। और उसकी इच्छानुसार स्वरूप बनाया जा सकता था। वह वज्र दधीचि की हड्डियों से पैदा हुआ था और सर्व प्रकार के तेजों को मात करने वाला था। उसका निर्माण वृत्रासुर को मार गिराने के निमित्त देवताओं के तेज से युक्त करके, करोड़ों सूर्य के सदृश चमकने वाला प्रलयकाल की अग्नि के सदृश योजन २ भर की ऊंची दाढ़ों से और अतिघोर जिह्वा से युक्त काल रात्रि के सदृश सौ पोरियों वाला, पांच योजन लम्बा, अनन्त दश योजन की परिधिका, चारों ओर से तेजधार वाला, बिजुली के सदृश चमकने वाला, बड़े मुट्ठे से जड़ा हुआ, तैयार किया गया था।

चालन, धूलन छेदन और भेदन ये चार गतियां ही सदा वज्र की कही जाती हैं।+

---

*भुशुण्डी तु बृहद् ग्रन्थि वृन्ददेहः सुसत्सरुः॥
बाहुत्रयसमुत्सेधः कृष्णसर्पानुदर्शवान्॥ ५१॥
यापनं घूरणञ्चैति द्वे गती तत्समाश्रिते॥ ५२॥

+अमुक्तं प्रथमं वज्रं वक्ष्यामि तवतच्छृणु॥
अप्रमेयबलं वज्रं कामरूप धरंचतत्॥ १॥
दधीचिपृष्ठास्थियजन्यं सर्वतेजः प्रधामकम्॥
वृत्रासुर निपातार्थं दैवते जोपबृंहितम्॥ २॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशं प्रलया निलसन्निभम्॥

ये वज्र का स्वरूप है। संस्कृत में वज्र का साधारण अर्थ बिजुली है। बिजुली के गिरने को वज्र पात कहते हैं। इस की शक्ति का मान तथा बल देख कर प्राकृतिक शक्ति के नियमों के अनुसार यदि प्राचीन विद्वानों ने कोई कामरूप धर भयङ्कर अस्त्र का आविष्कार किया हो तो कोई आश्चर्य नहीं है।

वर्त्तमान व मध्यकाल के विद्वान् इस वज्र को विचित्र सागुर्ज कासा रूप देते हैं।

इस प्रकरण को हम यहां ही समाप्त करते हैं शेष अस्त्र और शस्त्र अगले अधिकारण में लिखेंगे।

योजनोत्सेधदंष्ट्राभिर्जिह्वयाचातिघोरया ॥ ३ ॥
काल रात्रिनिकाशं तत् शतपर्वं समावृतम् ॥
पञ्च योजन विस्तार अनन्तदश योजनम् ॥ ४ ॥
अपिमण्डलसंवीतम् परितस्तीक्ष्ण कोटिमत् ॥
तडिद्गौरश्चपृथुनोत्सरुणा च विराजितम् ॥ ५ ॥
चालनं धूननं चैव छेदनं भेदनं तथा ॥
वलितानि च चत्वारि सदा वज्रं श्रितानिवै ॥ ६ ॥
(नीति प्रकाशिका अ० ५)

षष्ठ प्रकरण

शस्त्र तथा अस्त्र

नीति प्रकाशिका

गतप्रकरणों में पाठकों के समक्ष नीति प्रकाशिका के अनुसार कतिपय शस्त्र तथा अस्त्रों का स्वरूप बताते हुए नालिकास्त्र और वज्र ये दो महा अस्त्र आये। जिनको देखकर आग्नेयविद्या की उन्नति की कुछ मान या मर्यादा की कल्पना की जा सकती है। उसी क्रम के आगे शेष इस प्रकरण में दिये जाते हैं।

१—इली:-(Hand Sword) दो हाथ, ऊंची हाथ को बचाने की दण्डी से रहित मूठवाली सांवले रंग की, आगे से टूटे हुवे फलेवाली पांच अंगुल चौड़ी होती है।

सम्पात, समुदीर्ण, निग्रह और प्रग्रह ये चार ही इसकी गतियें हैं। *

परशु:—सूक्ष्म मूठी विशाल और आगे को बढ़ा हुआ मुखवाला, अर्ध चन्द्र के आकार का अग्रभाग, मैला रंग, चमकता मुख, मूंठ के ही पैर वाला एक बाहुमात्रलम्बा होता

---

* इली हस्तद्व योत्सेधा करत्ररहितत्सरुः
श्यामा भग्नाग्रफलका पञ्चांगुलि सुविस्तरा ॥ ७ ॥
सम्पातं समुदीर्णञ्च निग्रहप्रग्रहौ तथा ।
इलिमेतानि चत्वारि वल्गितानि श्रुतानि वै ॥ ८ ॥
(नी० प्र० अ० ५।)

है। पातन और छेदन ये दो ही इसकी गतियां हैं।×

३—गोशीर्षः—गोशीर्ष गाय के सिर जैसा दो पैर पसारे हुवे, नीचे जिसके दारू का बना हुआ फेंकने का यन्त्र लगा हुआ हो, ऊपर एक फला लगा हो; नीले रंग का, तीन कोणों वाला, अच्छे मुट्ठे से युक्त, १६ अंगुल परिमाणवाला, आगे से तेज और मध्य में चौड़ा होता है। इन्द्र ने अपनी मुद्रासहित यही गोशीर्ष प्रथम महाराज मनु को दिया था। तभी से राजप्रभुता का सूचक यह गोशीर्ष और मुद्रिका हो गयी। इसकी मुष्टिग्रह, परिक्षेप, परिधि, परिकुण्ठन ये चार गतियां हैं।+

× परशुः सूचर मुष्टिः स्यात् विशालास्यः पुरोमुखः ।।
अर्धचन्द्राग्रकोटिस्तु मालिनाङ्गः स्फुरन्मुखः ।। ९ ।।
वत्सरुपादः शशिखरः बाहुमानोन्नतां कृतिः ।।
पातनं छेदनं चेति गुणौ परशुमाश्रितौ ।। १० ।।
(नी० प्र० अ० ५)

+ गोशीर्ष गोशिरःप्राख्यं प्रसारितपदद्वयम्
अधस्ताद्दारूयन्त्राढ्यं ऊर्ध्वायः फलकाश्रितम् ।। ११ ।।
नीललोहित वर्णं तत् त्रिराशिच सत्सरुः ।।
षोडशाङ्गुल्युन्नतश्च तीक्ष्णाग्रं पृथुमध्यकम् ।। १२ ।।
सत्यकृत्य मनवेदत्तम्, महेन्द्रेण समुद्रिकम् ।। १३ ।।
प्रभुत्व सूचके लोके राज्ञां गोशीर्ष मुद्रिके ।।
मुष्टिग्राहः परिक्षेपः परिधिः परिःकुण्ठनम् ।। १४ ।।
इत्यार्येतानि गोशीर्षे वल्गिता निप्रचक्षते । १५
(नीति प्र० अ० ५)

४—असिधेनुः—एक हाथ लम्बा बिना हस्त के बचाने की दण्डी की मूंठ वाली, श्याम रंग की तीन धार वाली, दो अंगुल चौड़ी समीप के शत्रु पर वार करने वाली बीच में एक तड़ागी से बंधी हुई खड्गपुत्री या असिधेनु कहाती है। इसकी मुट्ठी में पकड़ना, पातन और कुण्ठन ये तीन ही गतियें हैं। यह अच्छे राजा लोगों को रखना चाहिये।*

५—लवित्र:—टेढ़े शरीर वाला, पीठ से चौड़ा और तेज धारवाला सामने काले रंग का, १६ अंगुल लम्बा और डेढ़ हाथ ऊंचा, होता है इसका भारी मुट्ठा होता है। मैंसे आदि का वात ही इसका प्रयोजन है। दोनों हाथों से उठाना और फेंकना यही इस की दो गतियें हैं।

आस्तरः—(Scatterer Bumering)

६—आस्तर:—आस्तर के पैर में गांठ, लम्बा सिर, लम्बा हाथ होता है। उसका पेट और हाथ टेढ़े होते हैं। रंग श्याम

---

(४) असिधेनुःसमाख्याता हस्तोन्नत्या प्रमाणतः ॥
अतलभत्सरयुत श्यामा कोटित्रयाश्रिता ॥ १५ ॥
अंगुलिद्वय विस्तारा ह्यासन्नरिपुघातिनी ॥
मेखला ग्रन्थिनी साधु प्रोच्यते खड्गपुत्रिका ॥ १६ ॥
मुष्ट्याःच ग्रहणं चैव पातनं कुण्ठनं तथा ॥
वाल्गितत्रय वत्येयं सदाधार्या नृपोत्तमैः ॥ १७ ॥
(नी० प्र० ५)

(५) लवित्रं भुग्नकायस्यात् पृष्ठे गुरु पुरः शितम् ॥
श्यामं पञ्चांगुलि श्याम महिषादिनिकर्त्तनम् ॥ १८ ॥
बाहुद्वयो द्यमक्षेपौ लवित्रे वल्गिते मते ॥ १९ ॥
(नी० प्र० ५)

लम्बाई दो हाथ की होती है। भ्रामण, कर्षण और त्रोटन ये तीन गतियां होती हैं। इसका ठीक ज्ञान करके शत्रु को मारे। इसको घुड़सवार और पैदल अपने काम में लाते हैं। (१)

७—कुन्तः—इसका सारा शरीर लोह का बना होता है। इसका सींग तीखा और तेज़ छै धार वाला पांच हाथ लम्बा टेढा पैर वाला बहुत भयंकर होता है। उड्डीन, अवडीन, भूमि लीनक, तिर्यग लोन और निखात ये कुन्त की गतियां हैं। (२)

८—स्थूणः—स्थूण लालदेह का, पास पास छोटे २ पोरुओं वाला, मनुष्य जितना ऊंचा, सीधा होता है। भ्रमण और पातन दो ही इसकी गतियां हैं। ×

---

(१) आस्तरः—आस्तरो ग्रन्थि पादःस्याद् दीर्घमौलि बृहत्करः
भुग्नहस्तोदरः श्रितः श्याम वर्णं द्विहस्तकः ॥ ५२० ॥
भ्रामणंकर्षणञ्चैव त्रोटनंतलित्रल्गितम्
ज्ञात्वाशत्रून् रणेहन्यात् धार्यः सादिपदातिकैः ॥२१॥
(नी० प्र० अ० ५)

(२) कुन्तः—कुन्तस्त्वयो मयडः स्यात् तीक्ष्णशृङ्गः षडश्रिमान् ।
पञ्चहस्तमसमुत्सेधो वृत्तपादोभयङ्करः ॥ २२ ॥
उड्डीन मवडीनञ्चनिडीनं भूमिलीनकम् ॥
तिर्यग्लीनं निखातञ्चषड् मर्माः कुन्तमाश्रिताः ॥२३॥
(नी० प्र० अ० ५)

× स्थूण स्थूरक्त देहः स्यात् समीप दृढ पर्वकः ।
पुम्प्रमाण ऋजुस्त स्मिन् भ्रामणं पातनं द्वयम् ॥२४॥
(नी० अ० ५)

९—प्रासः—प्रास सात हाथ ऊंचा, बांस का बना हुआ लोहे के सिर और तीखे पैरों वाला, रेशमी फूलों के गुच्छों से सुशोभित होता है। आकर्ष, विकर्ष, धूनन और वेधन ये चार गतियां प्रास की होती हैं।*

१०—पिनाकः—पिनाक का दूसरा नाम त्रिशूल है। इसके तीन सिरे, आगे से श्वेत भयंकर आंख वाला, कांसी का बना हुआ, लोहे के सिर वाला, ४ हाथ लम्बा होता है। इसके एक तरफ़ रीछ के बालों का गुच्छा और पीतल के छल्ले लगे रहते हैं। धूनन त्रोटन ये गतियां त्रिशूल की हैं। इसी को धारण करने से शिव पिनाकपाणि या त्रिशूली कहाता है।÷

११—गदा:—अति कठिन लोह की बनी हुई होती है। इसके मोटे से सिर पर सौ अरे खूंटे की न्यायीं लगे रहते हैं। यह बडी भयानक चार हाथ ऊंची, रथ के अक्षमात्र शरीर की बनी हुई, माथे पर लगे मुकुट से सुशोभित, सोने की

---

* प्रासस्तु: सप्तहस्तः स्यात् स्रोमन्तत्येन तु वैणवः।
लोह शीर्षस्तीक्ष्णपादः कौशेयस्तव काञ्चित ॥ २५ ॥
आकर्षञ्च विकर्षश्च धूननं वेधनं तथा
चतस्र एता गतयो रक्तप्रासं समाश्रिताः ॥ २६ ॥
(नी० अ० ५)

÷ पिनाकस्तु त्रिशीर्षः स्यात् सिताग्रः क्रूरलोचनः ॥
कांस्यकायो लोह शीर्षश्चतुर्हस्तप्रमाणवान् ॥२७॥
ऋक्षरोमस्तबकका भल्लोवलयग्रीववान् ।
धूननं त्रोटनञ्चेति त्रिशूल द्वे श्रिते गती ॥ २८ ॥
(नी० अ० ५)

जंज़ीर से बंधी हुई गज और पर्वतों को तोड गिराने वाली होती है। इसके मण्डल गति और प्रति गतियें विचित्र तथा अस्त्र और यन्त्र भी और नाना स्थान भी विचित्र होते हैं। परिमोत, ग्रहण, वर्जन, परिधावन, अभिद्रावण, आक्षेप, विग्रह सहित अवस्थान, परावृत्त, सन्निवृत्त, अवप्लुत, दक्षिण मण्डल, स्वयं मण्डल, अविद्ध प्रविद्ध, और ज्वालन उपन्यस्त और अपन्यस्त ये २० गदा की गतियें हैं।*

पाठक! इसमें देख सकते हैं कि गदा का कैसा विचित्र रूप है। रथ का अक्षमात्र ही इसका शरीर है। अर्थात दो पहिये और बीच का धुरा ऊपर मोटा सा सिर जिसमें ऊपर और इधर उधर के पासों में शंकु लगे हुये रहते हैं दूसरा ध्यान देने योग्य स्थल इसकी गतियों में हैं। स्फोटन और

---

* गदाक्षैक्यायसमयी शतार पृथुशीर्षका ॥
गज कुप्रावरणा घोरा चतुर्हस्तसमुन्नता ॥२९॥
रथाक्षमात्रकाया च किरीटाञ्चितमस्तका ।
सुवर्णमेखलागुप्ता गज पर्वतभेदिनी ॥ ३० ॥
मण्डलानि विचित्राणि गत प्रत्यागतानि च ॥
अस्त्रयन्त्राणि चित्राणि स्थानानि विधानि च ॥३१॥
परिमोचम् प्रहरणम् वर्जनम् परिधावनम् ॥
अभिद्रावणमाक्षेपम् अवस्थान सविग्रहम् ॥ ३२ ॥
परावृत्तं सन्निवृत्तम् अवप्लुतमुपप्लुतम् ॥
दक्षिण मण्डलञ्चैव स्वयं मण्डल मेव च ॥ ३३ ॥
अविद्धञ्च प्रविद्धञ्च स्फोटन ज्वालनं तथा ॥
उपन्यस्तमपन्यस्त गदामार्गास्त्रविंशतिः ॥३४॥
(नं ति प्र० अ० ५)

ज्वालन भी गदा में ही होता है कि इससे प्रतीत होता है कि शंकु नालियां हैं जिनमें से फूटने या भड़कने वाले संहारक द्रव्य निकलता है और शत्रु का नाश करता है। बारूद के सहारे से कोई यह एक आग्नेय अस्त्र है। इस में नाना अस्त्र तथा यन्त्र भी हैं। यह वास्तव में बड़ा घातक अस्त्र होगा। चक्र लगे होने से स्थानान्तर में भी बहुत सुगमता से लेजाया जाता था। यह सहस्र नाली वाला तोप यदि कल्पना किया जावे तो कहा जा सकता है कि गदाधारी भीम या गदाधर विष्णु के हाथ में गदा का प्रतिनिधिमूसली या मूंगरीसी पकड़ा देना नितान्त शास्त्र विरुद्ध तथा मूर्खता का सूचक है। इसी महास्त्र के साथ यह अध्याय भी समाप्त किया जाता है। और शतघ्नी जैसे महास्त्र को हम अगले अध्याय के लिये बचा रखते हैं।

इतिषष्ठ प्रकरण

सप्तम प्रकरण

शस्त्र तथा अस्त्र

गत प्रकरण में पाठक महोदयों ने गज और पर्वतों तक को तोड़ डालने वाली स्फोटन और ज्वालन करने वाली महाभयंकर आग्नेय अस्त्र की सादिणी गदा का सविस्तर वर्णन पढ़कर गत प्रकरण समाप्त किया था। इस प्रकरण में नीति प्रकाशिका के प्रतिपादित शेष अस्त्र शस्त्रों का सोपसंहार वर्णन समाप्त किया जाता है।

१—मुद्गरः—सूक्ष्म पैर वाला, विना सिर का, तीन हाथ लम्बा, शहद के से रंगवाला, चौड़े कन्धों वाला और आठ धड़ी भारी होता है। इसकी मूठ नीले रंग की गोल और हाथ भर मोटी होती है, इसको घुमा कर किसी वस्तु पर मारा जाता है और वह वस्तु ज़मीन पर गिर पड़ती है, अतएव भ्रामण और पातन ये दो गतियां इसकी हैं।+

२—सीरः—सीर दुधारा विना चोटी का एक लोहपट्ट में जड़े मुख का होता है। इस के सामने जो वस्तु आती है उसको छिन्न भिन्न कर देता है। यह मनुष्य इतना लम्बा, मनोहर चिकने रंग का होता है। उसको खींचा जाता है और मनुष्यों को गिरा देता है इसी से इसकी दो गतियां हैं स्वकर्ष और विनिपातन। *

३—मुसलः—मुसल के न आंख, न सिर, न हाथ और न पैर होते हैं। दोनों सिरों पर यह खूब गंठा होता है और पातन (गिरना), और प्रोथन (पीसना) येही दो इसकी गतियां हैं। +

+ मुद्गरः सूक्ष्म पादः स्यात् हीन शीर्ष स्त्रिहस्तवान्।
मधुवर्णः पृथुस्कन्धश्चाष्ट भाग गुरुश्चसः ॥ ३५ ॥
सत्सरु वर्तु लो नीलः परिध्या करमं मितः।
भ्रामणं पातनं चेति द्विविधंमुद्गराश्रितम् ॥ ३६ ॥
(नी० म० अ० ५.)

* सीरोद्विवक्रो विशिखो लोह पट्ट मुखःकृपन्।
नृम्प्रमाणः स्निग्धवर्णः स्वकर्ष विनिपातवान् ॥ ३७ ॥

× मुसलस्त्व विशीर्षाभ्यां करैः पादैर्विवर्जितः।
मूले चान्तेति सम्ब द्धः पातनं प्रोथनं द्वयम् ॥ ३८ ॥

४—पट्टिशः—पट्टिश एक मनुष्य प्रमाण लम्बा दो धार और तीखे सींग वाला, हाथ के बचाने वालो मूंठ से जड़ा हुआ, खड्ग का सगा भाई होता है ÷

५—मुष्टिकः—(Dagger) मौष्टिक सुन्दर मुंह वाला एक हाथ लम्बा, तेज़ धार और झुकी गर्दन और चौड़े पेट वाला, श्वेत वर्ण का होता है। इसकी नाना प्रकार की चक्कर दार गतियें नाना प्रकार की स्थितियें [पैतरें] और विचित्र प्रकार के गो सूत्रिक चालें, लौटना और आगे टेढ़ा जाना और वक्र घूम कर जाना आदि चालें होती हैं। इसकी परिमोक्ष प्रहरण वर्जन परिधावन, अभिद्रावण, अप्लावन परावृत्त अपावृत, अपद्रुतअपप्लुत, अपन्यस्त और उपन्यस्त, आघात स्थालन, ये सब गतियें हे राजन ? मौष्टिक में ही कही जाती हैं। *

÷ पट्टिशः पुम्प्रमाणः स्यात् द्विधारस्तीक्ष्णशृङ्गकः।
हस्त त्राण समयुक्तो मुष्टिः खड्गसहोदरः ॥ ३९ ॥
(नी० प्र० अ० ५)

* मुष्टिकं सत्सरुज्ञेयं प्रदेशोन्नतिभूषितम्।
शिताग्रं सन्नतग्रीवं पृथूदरं सितं तथा ॥ ४० ॥
मण्डलानि विचित्राणि स्थानानि विविधानि च।
गोमूत्रिकाणि चित्राणि गतप्रत्यागतानि च ॥ ४१ ॥
तिरश्चीन गतान्येव तथा वक्रगतानि च।
परिमोचं प्रहरणं वर्जनं परिधावनं ॥ ४२ ॥
अभिद्रावणमाप्लाव साधःस्थानं सविग्रहम्।
परावृत्तमपावृत्त मपद्रुत्त मुपप्लुतम् ॥ ४३ ॥
अपन्यस्तमुपन्यस्त माघातं स्थालनं तथा।
एतानि वल्गितान्यहुर्मौष्टिके नृपसत्तम ॥ ४३ ॥

६—परिघः—(Battering Ram) परिघ गोल आकार वाला ताड़ के वृक्ष इतना लम्बा अच्छे दृढ़ काष्ठ का बना हुआ होता है। विद्वान् लोग जानते हैं कि सारी सेना की पलटन इस शस्त्र को उठा कर मारा करती है।

७—मयूखीः— (Pole) एक मनुष्य प्रमाण ऊंची, मूठ वाली एक लाठी होती है। इस पर घुंघरू बन्धे होते हैं और यह नाना रंगों से चित्रित तथा एक फालिका (छोटी ढाल) के साथ ही काम में आती हैं। आपात, प्रतिघात, विघात, परिमोचन और अभिद्रावण ये पांच गतियां मयूखी को होती हैं।

८—शतघ्नीः* — (Hundred killer) शतघ्नी काले दृढ़ लोहे की बनी हुई मज़बूत सैकड़ों कांटों से जड़ी हुई, मुद्गर के सदृश चार हाथ लम्बी गोल और मूंठ से युक्त होती है। इसकी सब चालें भी गदा की चालों के सदृश होती हैं।

इस प्रकार प्राचीन काल का महा भयंकर अस्त्र शतघ्नी भी पाठकों के समक्ष आ गया। स्फोटन और ज्वालन इस में भी गदा के सदृश ही है। मुद्गर के सदृश मध्य में स्थूल है। कण्टक वास्तव में नाली रूप शंकु होते हैं जिनमें से सहसा बारूद गोली निकल कर शत्रु को मारती है। इस से यह अस्त्र आग्नेय ही का है। ये सब इन चार प्रकरणों में

---

* शतघ्नी कण्टक युता कलायसमयी दृढ़ा।
चेच्चहस्त मुद्गराभा वत्तु लात्सरुण युता ।। ४८ ।।
गदा वलितवत्ये षामयेतिकाथिता तव ।। ४९ ।।

गिनाये गये थे। इस में नीति प्रकाशिकोक्त उपरोक्त २० हथियार अमुक्त कहाते हैं।

इस शस्त्रास्त्र का प्रकरण समाप्त करते हुए नीति प्रकाशिका के प्रणेता मुनि वैशम्पायन मन्त्र मुक्त अस्त्रों को गिनाते हैं और कहते हैं कि "यही *सब शस्त्र तथा अस्त्र युगों के बदल जाने से हे नृप! मनुष्यों के शरीरों की दृढ़ता और बुद्धि के अनुसार विकार को प्राप्त हो जावेंगे।

लोहे और सीसे के बने हुए, और गोलियां फेंकने वाले यन्त्र तथा पत्थरों के फेंकने के यन्त्र, और कृत्रिम नाना यन्त्र बनाये जाँयगे। हे राजन् कलियुग में शस्त्रों में कूट युद्ध की सहायता भी ली जावेगी। गरम किया तैल द्रव्य तथा सज्जी-की खार गुड़ वाल तथा उग्रवालु मधु विष कंकरियां तथा बड़ी २ शिलाएं चाकू कैंची लोहे का पत्तियें तथा धूएं का गोलियां जलता हुआ तुष तथा भभकते हुए कोयले भी कार्य में आ जावेंगे।" शायद यही भविष्य वाणी वर्तमान में अब भी

---

*एतानि विकृति यान्ति युगपर्याय भेदतः।
देहदा र्ढ्यानुसारेण तथाबुद्ध्यनुसारतः ॥५१॥

यन्त्राणिलोहसीसानां गुलिकाचेपकानिच।
तथा चोपलयन्त्राणि कृत्रिमा न्यपराणिच ॥५२॥

कूटा युद्ध सहायानि भविष्यन्ति कलौ नृप।
तप्ततैलं सर्जरस गुडवालोग्रवालुका ॥ ५३ ॥

मधु चापि विषाघात शिलकानि बृहच्छिलाः।
क्षवा धूमगुलिकाः तुषाङ्गारादिकं तथा ॥ ५४

(नी० प्र०अ०५)

सत्य प्रतीत हो रही है। इस प्रकार से वर्त्तमान आविष्कारकों के बनाये आग्नेयास्त्र के भी मूल सिद्धान्तों का प्राचीन काल में पर्याप्त ज्ञान तथा उपयोगी प्रतीत होता है।

नीतिप्रकाशिका के द्वितीय अध्याय में शस्त्रास्त्र की उत्पत्ति तथा पुनरुत्पत्ति के विषय में इस प्रकार की कथा कही गई है!

"देव दानवों का बड़ा भारी युद्ध हुआ देव लोग धनुर्वेद में प्रशस्त न होने के कारण युद्ध में पीठ दिखाकर भागे मार्ग में दधीचि मुनि मिले उन्होंने अपने सब अस्त्र तथा शस्त्र दधीचि के पास धरोहर धर दिये। अन्त में वे भागते २ मन्दर पर्वत पर पहुँचे। वहां उन्होंने विश्राम लिया। कतिपय वर्षों तक वहां ही निर्भय रहे। इस बीचमें दधीचिऋषि ने उन सब शस्त्रों की अच्छी प्रकार रक्षा की और उसके तप के प्रभाव से वे सब लोहे के फले बन गये। और वे सब उसके शरीर में घुस कर उसकी हड्डी बन गये। चिरकाल बीतने पर देवताओं के चित्त में फिर से दानवों को पराजय करके अपना राज्य लेने का विचार उठा परन्तु शक्ति सामर्थ्य हीन होने से वे सब ब्रह्मा की शरण में गये। ब्रह्मा ने दया करके मन्त्रोपसंहार सहित साङ्ग धनुर्वेद का उपदेश किया। और कहा कि दधीचि से अपने शस्त्र मांगलो। देवताजन ने फिर से अपने शस्त्रों की दधीची से याचना की। दधीचि ने दया करके अपना प्राण त्याग किया और अपनी अस्थियें उन्हें दे दी। प्राण छोड़ने के पहले उसने कहा कि एक गाय मेरे सारे शरीर को चाट कर सारा मांस खा जाय फिर उसकी हड्डियें ही अस्त्र रूप में शेष रह

जांयगी। देवताओं ने गाय से उसका शरीर चटाया। अस्थियें शेष रह गईं। उसकी हड्डियों को लेकर देवता युद्ध में गये। और दानव लोग उनके सामने पर फिर न डट सके। दधीचि की शेष अस्थियें ३१ शस्त्र, तथा मेरुदण्ड का वज्र बनाया गया। क्योंकि गाय ने ब्राह्मण का मांस भक्षण किया तब से गाय का मुख अशुद्ध और पुच्छ भाग शुद्ध माना जाता है।

खड्ग या असि का उपरोक्त शस्त्रों में नाम नहीं आया। यह ब्रह्मा की स्वयं अपनी ही रचना है। इससे इसको बहुत पवित्र माना गया है।

अग्नि पुराण में इसको जघन्य शस्त्रों में गिना है। परन्तु वैशम्पायन ने नीति प्रकाशिका का तीसरा अध्याय सम्पूर्ण खड्ग पर ही लगा दिया है। इसकी कथा इस प्रकार है कि:—

देव दैत्यों के घोर संग्राम होने पर हिमाद्रि के शिखर पर ब्रह्मा का अंशावतार खड्ग आदि देवता हुआ। इसके प्रकट होते ही पृथिवी और आकाश कांप गये। ब्रह्मा ने इसको इस लिए सृजा कि इससे दैत्यों और दानवों का संहार किया जाय। यह ५० अंगुल लम्बा और चार अंगुल चौड़ा था।

प्रथम २ ब्रह्मा ने यह शस्त्र शिव को दिया कृत कृत्यता प्राप्त करने पर इसी शस्त्र का उपदेश मरीची आदि ऋषियों को किया। अन्त में ऋषभ ऋषि ने इन्द्र को दिया। इन्द्र ने इसी शस्त्र का प्रचार दिक्पालों और लोक पालों में किया।

पापाचारियों के मध्य धर्म का शासन करने के लिये अन्त में मनुभगवान को भी इसी का उपदेश दिया। तब से मानव वंश में ही इसका अधिक प्रचार है। इसका कृत्तिका नक्षत्र तथा अग्निदेवता हैं गोत्र रोहिणी, मुख्य देवता रुद्र है। इसके निस्त्रंश नाम को छोड़ कर आठ नाम हैं। असि विशमन और खड्ग तीक्ष्णधार दुरासद, श्रीगर्भ, विजय, और धर्ममूल। इसकी ३२ भिन्न गतियें तथा पैतरें हैं। इसको वायीं तरफ़ बांधा जाता है।

अस्त्रों का तृतीय प्रकार मुक्त संधारित हैं जिनको प्रथम छोड़ा जाता है और उपसंहार कर के उसको प्राप्त कर लिया जाता है इन्हींका अपरनाम सोपसंहार अस्त्र भी कहाता है। इसकी ४४ प्रकार हैं:—

१	दण्ड चक्र	१४	आर्द्र
२	धर्म चक्र	१५	शिखरास्त्र
३	काल चक्र	१६	क्रौञ्चास्त्र
४	ऐन्द्र चक्र	१७	हयशीर्ष
५	शूलवर	१८	विद्यास्त्र
६	ब्रह्मास्त्र	१९	अविद्यास्त्र
७	मोदकी	२०	गंधर्वास्त्र
८	शिखरी	२१	नन्दनास्त्र
९	धर्मपाश	२२	वर्षणास्त्र
१०	वरुणपाश	२३	शोषणास्त्र
११	पैनाकास्त्र	२४	मौसलास्त्र
१२	वायव्य	२५	प्रशमनास्त्र
१३	शुष्क	२६	सन्तापनास्त्र

२७ विलापनास्त्र
२८ मथनास्त्र
२९ मानवास्त्रास्त्र
३० शमन्त्रास्त्र
३१ तामसास्त्र
३२ संवर्त्तास्त्र
३३ मौसलास्त्र
३४ सत्यास्त्र
३५ सौरास्त्र
३६ मायास्त्र
३७ त्वाष्ट्रास्त्र
३८ सोमास्त्र
३९ संहारास्त्र
४० मानसास्त्र
४१ नागास्त्र
४२ गारुड़ास्त्र
४३ शैलास्त्र
४४ इषीकास्त्र

ये सोप संहार अस्त्र हैं।

निम्न लिखित ५४ उपसंहारास्त्र हैं जो ऊपर के कथित अस्त्र यदि शत्रु प्रयोग करे तो जो इनके प्रतिकार में छोड़े जाते थे।

१ सत्यवान्
२ सत्य कीर्त्ति
१२ सुनाभक
१३ दशाक्ष

(१) दण्डचक्रं धर्म चक्रं कालचक्रं तथैवच।
ऐन्द्र चक्रं शूलवरं ब्रह्मशीर्षंच मोदकी॥
शिखरी धर्म पाशश्च तथाः वरुण पाशकम्।
पैनाकास्त्रं हयशीर्षं दिव्यादिव्येस्त्र संज्ञिके॥
गन्धर्वास्त्रं नन्दनास्त्र वर्षण, शोषणं तथा।
संवर्त मौसलं सत्यं सौरं मायास्त्र मेवच॥
त्वाष्ट्रमस्त्रञ्च सोमास्त्रं संहारं मानसंतथा।
नागस्त्रं गारुड़ास्त्रं शैलेषी के ऽ स्त्रसंज्ञिके॥
चतुस्त्वरिंशत्प्रारिचै तानि सोपसंहार कारिण।
वक्ष्यामि जोपसंहारास्त्र क्रमं प्राप्त निबोधये॥

३	रभस	१४	शतवक्र
४	धृष्ट	१५	धर्मनाभ
५	प्रतिहार	१६	शतोदर
६	अवाङ्मुख	१७	दश शीर्ष
७	पराङ्मुख	१८	महानाभ
८	दृढ़नाभ	१९	डुण्डुनाभ
९	अलक्ष्य	२०	नाभक
१०	लक्ष्य	२१	ज्योतिष
११	आविल	२२	विमल
२३	नैराश्य	३९	धनरति
२४	कर्षण	४०	धान्य
२५	योगन्धर	४१	काम रूपक
२६	सनिद्र	४२	जृम्भक
२७	दैत्य	४३	आवरण
२८	प्रमथन	४४	मोह
२९	सार्विमाल	४५	कामरुचि
३०	धृति	४६	वारुण
३१	माली	४७	सर्वदमन
३२	वृत्तिम	४८	सन्धान
३३	रुचिर	४९	सर्पनाथक

यान ग्रात्थावै रिपुत्यानि चास्त्राणि शमयिष्यसे।
सत्यवान् सत्य कीर्त्तिश्च रभसो धृष्ट एवच ॥

प्रतिहारतरश्चैवाप्यवाङ् मुख पराङ् मुखौ।
दृढ़ नाभो लक्ष्य लक्ष्या वा विलश्च सुनाभकः ॥

३४	पित्र्य	५०	कंकालास्त्र
३५	सौमनस	५१	मौसलास्त्र
३६	विधूत	५२	कायालास्त्र
३७	मकर	५३	कंकण
३८	करवीर	५४	पैशाचास्त्र

येही सब सोपसंहार और उपसंहार अस्त्र रामायण के बाल काण्ड के २८ और २९ अध्यायों में परिगणित हैं।

मुक्तामुक्त श्रेणी से उत्तर कर चौथा प्रकार मन्त्र मुक्त का है। इसमें वैशम्पायन के अनुसार ६ अस्त्र हैं :—

दशा चः शतवक्त्रश्च दशशीर्षशतोदरौ ।
धर्म नाभो महा नाभो दुण्डुनाभोः सुनाभकः ।।

ज्योति सा विमलौ चैव नैराश्यकर्षणा वुभौ ।
यौगन्धरः सनि द्रश्च दैत्यः प्रथमनस्तथा ।।

करवीरो धनारातिः धान्य वैकाम रूपकः
जृम्भका वरुण श्चैव मोहः कामरुचिस्तथाः

वारुणः सर्व दमनः सन्धानः सर्पनायकः
कंकालास्त्र मौसलास्त्रं कापाल स्त्रं च कंकणम्

पैशाचास्त्रं चेति पञ्चसुराश्वाणिभारत ।।
सन्यवान् संर्वदमनः कामरूपस्तथैवच

योगन्धरोऽप्यलक्षयश्चा पञ्चसुराश्वविघातकाः
चतुश्चत्वारिंश देते पञ्चान्योन्याविमर्दनाः

मेल यित्वाच पंचशत एकोनाष्टस्त्र शायकः
सर्व मोचननामातु सुप्रमाणनयोर्महास्त्र
मुक्ता मुक्ता खिलशमो मद् वरा ह्युषितः परः

*१. विष्णु चक्र ४. कालपाशक
२. वज्रास्त्र ५. नारायणास्त्र
३. ब्रह्मास्त्र ६. पशुपतास्त्र.

इन अस्त्रों का साम्य अन्य किसी अस्त्र से भी नहीं हो सकता॥ इस प्रकार वैशम्पायन अपने धनुर्वेद के अस्त्रों को समाप्त करते हैं। इस प्रकरण को हम यहां ही समाप्त करते हैं और अगले प्रकरण में विश्वामित्र धनुर्वेद तथा शार्ङ्गधर धनुर्वेद के तथा तन्त्र ग्रन्थों में यत्र तत्र वर्णित अस्त्र कथा का परिचय पाठकों को करायेंगे। हमें पूर्ण आशा है कि पाठक इसमें अवश्य रुचि अनुभव करते होंगे।

अष्टम-प्रकरण

महाभारत काल में

महास्त्रों का प्रयोग

पाठकगण ने गत प्रकरणों में अनेक अस्त्रों की नामावली का अवलोकन किया सम्भवतः अभी यह इच्छा भी पाठकों की होगी कि इन अस्त्रों का भी स्वरूप दिखाया जावे और बतलाया जावे कि इनका किस प्रकार उपयोग लिया जाता

---

* विष्णु चक्रं वज्रमस्त्रं ब्रह्मास्त्रं कालपाशकम्।
नारायणं पाशुपतम् नाशाम्यम् इतरास्त्रकैः॥ ४०॥
(नि० प्र० अ०)

था। क्या परिणाम होता था और छोड़ने पर कैसा दृश्य दीखना सम्भव है। आइये पाठक जन? कुछ परिश्रम करने पर कटिबद्ध हो जाइये। क्योंकि महास्त्रों की कथा पढ़ना तथा नाम जपलेना बहुत सरल है परन्तु उपयोग और युद्ध का दृश्य देखना बड़े साहस का कार्य है। घोर घमासान रण रंग की क्रीड़ करते हुये वीर योद्धाओं के बीच खड़ा होकर इनका पूर्णतया पता लग सकता है। अतः प्राचीन महास्त्रों का प्रयोग देखने के लिये प्राचीन महाभारत महायुद्ध के महारथों के घोरसंग्रामों का अनुशीलन करने से महास्त्रों का महाभयंकर दृश्य का अनुभव कीजिये। यथा शक्य जितने महास्त्रों का प्रयोग हमें प्राप्त हुआ है उनको क्रमशः संख्यावार हम इस प्रकरण में उल्लेख करते हैं। पाठक गण सावधान होकर सुनें तथा कल्पनामय आंखों से मनोहर दृश्य भी देखिये।

१—अस्त्रों की भूमिका:—अस्त्रों का प्रथम चमत्कार द्रोणचार्य के शिष्यों ने अपने तत्रविश्वविद्यालय में सिद्ध अस्त्र होकर परीक्षा रंग स्थल में दिखाया था। उसमें अर्जुन का अस्त्र लाघव दिखाते हुये वैशम्पायन मुनि कहते हैं कि:—

"रंग स्थल के प्रसन्न तथा उत्सुकता पूर्वक वैठ जाने पर आचार्य के समक्ष अर्जुन ने अपना अस्त्र लाघव इस प्रकार दिखाया। आग्नेय से अग्नि पैदा की, वरुणास्त्र से पानी बरसाया, वायव्यास्त्र से हवा चलाई, पार्जन्यास्त्र से बादल बनाया, भौमास्त्र से भूमि में घुस गया पार्वतास्त्र से पहाड़ बन गया अन्तर्धानास्त्र से स्वयं छिप गया। क्षण भर में ऊंचा क्षण

भर में नीचा क्षण भर में रथ की धुरा में घुस जाता था क्षण भर में रथपर बैठकर क्षण भर में पृथ्वी पर उतर आता था। बड़े छोटे सभी निशानों को नाना प्रकार के शरों से बींध दिया। बराबर एक तान से घूमते हुये लोहे के मुख में पृथक् २ पांचवाण ऐसे मारे कि मानों एक वाण ही मारा हो। एक रस्सी में लटकते हुये गाय के सींग को चंचल करके २१ वाण मारे। इसी प्रकार तलवार, धनुष और गदा में भी अर्जुन ने अपना अस्त्रलाघव दिखाया।"१

इसमें आप देख सकते हैं कि आग्नेय, वायव्य, पार्जन्य वारुण, भौम पार्वत और अन्तर्धान आदि अस्त्रों का कैसा

---

(१) तस्मिन् प्रमुदिते रङ्गे कथञ्चित् प्रत्युपस्थिते
दर्शयामास बीभत्सुराचार्यायास्त्रलाघवम् ॥ १८ ॥
आग्नेयेनासृज द्वन्हिं वारुणेनासृजत्पयः ॥
वायव्येना सृजद्वायुं पार्जन्येना सृजद्घनान् ॥ १९ ॥
भौमेना प्राविशद् भूमिं पार्वतेना भवद्गिरिः ॥
अन्तर्धानेन चास्त्रेण पुनरन्तर्हितोऽभवत् ॥ २० ॥
क्षणात्प्रांशुः क्षणाद्ध्रस्वः क्षणाच्चरथ धूर्गतः ॥
क्षणेन रथमध्यस्थः क्षणेनावतरन्महीम् ॥ २१ ॥
सुकुमारञ्च सूक्ष्मञ्च गुरुञ्चापि गुरुप्रियः ॥
सौष्ठवेना भिसंछिन्नः सोविध्यद्विविधैः शरैः ॥ २२ ॥
भ्रमतश्चवराहस्य लोहस्य प्रमुखे समम्
पञ्चबाणान् संसमान् संभुमो चैकवाण वाणवत् ॥ २३ ॥
गव्ये विपाण कोपेच चलेरं ज्ववलम्बिनि
निचखान महावीर्यः सायकानेकविं शतिः ॥ २४ ॥

(महा० आदि० १३७)

अद्भुत वर्णन है। अग्नि वर्षण वायु प्रवहण, जल वर्षण भूमिमें प्रवेश और पर्वत निर्माण आदि का कैसा अद्भुत फल महास्त्रों का होता था।

२—इषीकास्त्रः—रामायण में काकभुसुण्ड ने सीता के स्तन पर उद्धतता से विक्षत किया तिस पर रामचन्द्र ने इषीकास्त्र से उस काकभुसुण्ड को मारा। महाभारत में कृपाचार्य की अध्यक्षता में पढ़ते हुये युधिष्ठिरादि राजकुमारों की खेलते हुये गेन्द एक सूखे कुंए में गिर पड़ी। अवसरानुकूल द्रोणाचार्य वहां आन पहुँचे। उन्होंने इषीकास्त्र से उनकी गेंद निकाली उसका वर्णन इस प्रकार है कि द्रोण बोले कि "यह सींखों की एक मूट्ठी मैंने अस्त्र से अभिमन्त्रित की है इसका बल देखो इतना बल किसी अन्य वस्तु में नहीं है। मैं गेंद को इस सींख से भेद दूंगा और उस सींखको दूसरी सींख से और उसको तीसरी से इस प्रकार में गेन्द निकाल लूंगा। इसी प्रकार इसने अपनी मुद्रा भी कुंए में डालकर उसे बाण के जोर से ऊपर निकाला। २

---

(२) एषा मुष्टिरिषीकास्त्रं मयास्त्रेणाभिमन्त्रिता ॥
अस्यावीर्यं निरीक्षध्वं यदन्यस्य नविद्यते ॥ १४ ॥
भेत्स्यामीषीकया वीटां तामिषीकां तथान्यया ॥
तामन्यया समायोगे वीटाया ग्रहणं मम ॥ १५ ॥
ततःशरं समादय धनुर्द्रोणो महायशाः
शरेण विद्धांमुद्रांतामूर्ध्वमा वाहयत्प्रभुः ॥ १८ ॥
(महा० आदि० १३३)।

इससे यह इषीकास्त्र मन्त्र मुक्त अस्त्र प्रतीत होता है कि सीखों में भी इतना वीर्य ववल आधान हो जाता है कि वह तुरत गेंदको भी फाड़ सकता है। मन्त्र का वीर्य हमारे शास्त्रों में बहुत गाया गया है। आथर्वणिक प्रयोग तथा तान्त्रिक मारणादि वह कर्म सब अध्यात्म शक्ति को मन्त्र के द्वारा किये जाते हैं। इसी से प्रबल प्राकृतिक शक्ति को वश में कर सिद्ध करके उस द्वारा मन्त्र मुक्त अस्त्रों का किसी भी स्थान पर स्वरूप नहीं बतलाया गया। जो हम आगे चल कर स्पष्ट करेंगे।

३—ब्रह्मशिरास्त्र:—अर्जुन को द्रोणाचार्य योग्य शिष्य जान कर उसको ब्रह्मशिरा नामके अस्त्र का उपदेश देते हैं कि:—

"हे महा बाहो! इस अति कठिनता से धारण करने योग्य खास प्रकार के अस्त्र को धारण कर। यह ब्रह्मशिर नामक अस्त्र है। इसके प्रयोग और निवर्त्तन को सीख। परन्तु इस अस्त्र को तू मनुष्यों पर कभी मत चलाना। हीन और न्यून बल पर यदि इस अस्त्र को छोड़ेगा तो सम्पूर्ण संसार जल उठेगा। संसार में यह बड़ा असामर्थ्य अस्त्र है उसका सदा धारण करना भी सीखले। अदि अमानुष शत्रु तुझको कष्ट देवे तब उसको मारने के लिये इसका प्रयोग करना।" (३)

---

३) गृहाणेमं महाबाहो विशिष्ट मति दुर्धरम् ।
अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम सप्रयोग निवर्त्तनम् ॥ १८ ॥
नचते मानुषे ष्वेतत्प्रयोक्तव्यं कथञ्चन ॥

इस ब्रह्मशिरास्त्र के रूपमें भी जला देने की अद्भुत शक्ति का किस प्रकार का विलक्षण चमत्कार है। यही आग्नेय अस्त्र की महोदारता का परिचय कराता है।

४—आग्नेयास्त्रः—"यह प्राचीन अग्नेयास्त्र भरद्वाज ऋषि को बृहस्पति ने सिखाया। भरद्वाज ने अग्निवेश को दिया अग्निवेश से द्रोणाचार्य ने और द्रोण से अर्जुन ने सीखा (४) यह तो आग्नेयास्त्र की शिक्षा की शिष्य परम्परा का वर्णन है परन्तु इस शिष्य परम्परा का "वर्णन करते हुये अर्जुन ने गन्धर्व राज पर यह अस्त्र छोड़ा। परिणाम यह हुआ कि उस का रथ जल गया और गन्धर्व स्वयं आहत होकर औंधा गिर पड़ा अस्त्रयान से मूर्छित हुए हुए गन्धर्व को अर्जुन उस

जगद्विनिर्दहेत् दस्प तेजसि पातितम् ॥ १९ ॥

असामान्यमिदं तात लोकेष्वस्त्रं निगद्यते ॥

तद्धारयेथाः प्रयतः शृणु चेदं वचोमम ॥ २० ॥

वाधेतामानुपः शत्रुयदि त्वांवीर कश्चन ॥

तद्वधाय प्रयुञ्जीथा स्तदस्त्र मिदमाहवे ॥ २१ ॥

(महा भा० आदि० १३५)

(४) पुरास्त्र मिदमाग्नेयं प्रदोत्किलवृहस्पतिः

भरद्वाजायगन्धर्व गुरुर्मान्यः शतक्रतोः ॥ २८ ॥

भरद्वाजो दग्निवेश अग्नि वेशाद् गुरुर्यम ॥

साध्विदं न स्त्रमददद द्रोणो ब्राह्मणस्तमः ॥ २९ ॥

(महा० आदि० १७२)

के केशों से पकड़ कर अपने भाइयों के पास लाया" (१)

इस प्राचीन आग्नेयास्त्र का यह वीर्य था कि रथादि जल जाते थे और व्यक्ति पछाड़ खाकर मूर्छित हो जाता था।

५—इन्द्रास्त्र:—खाण्डव दाह के समय अर्जुन के तीव्रशर प्रहार से संक्रुद्ध हुए इन्द्र ने अपना अस्त्र छोड़ा। इस से बड़ा शब्द करती हुई वायू सब सागरों को कपाती हुई मेघों को पैदा करती हुई जल धारा बरसाती हुई घोर शब्द करने वाली बिजुलियों द्वारा अस्त्र पात करती थी। (२)

पाठक देख सकते हैं इन्द्रास्त्र में भी पार्जन्यास्त्र जलास्त्र तथा वज्र का अद्भुत मेल है। ऐसा एक अस्त्र बना लेना जो वायु बनावे मेघ बनावे और जल बरसावे और साथ ही बिजुली से शत्रु का संहार करे यह भी उन्नति की पराकाष्ठा दिखलाता है। ऐसे भयंकर महास्त्र के प्रतिकार में अर्जुन ने वायव्यास्त्र का प्रयोग किया।

---

(१) इत्युक्त्वा पाण्डवः क्रुद्धो गन्धर्वाय मुमोचह ।।
प्रदीप्तमस्त्रमाग्नेयं ददाहास्यरथन्तुतत् ।। ३० ।।
विरथं विप्लुतं तन्तु सगन्धर्वं महाबलम् ।।
अस्त्रतेजः प्रभूवं प्रपतन्तमवाङ् मुखम् ।। ३५ ।।
शिरोरुहेषु जग्राह माल्यवत्सु धनञ्जयः ।
भ्रातृन् प्रति चकर्षाथसोऽस्त्रयातावद चेतनम् ।। ३२ ।।
(२) देवराजोचितं दृष्ट्वा वा सं रब्धं समेऽर्जुन
स्वमस्त्रं मसृजत् तीव्रं द्रावयित्वा खिलं नभः ।। १३ ।।
ततोवायुर्महाघोषः क्षोभयन् सर्वसागरान् ।

६—वायव्यास्त्र:—"वायव्यास्त्र को अभिमन्त्रण कर चतुर अर्जुन ने अशनि और मेघों के बल का नाश कर दिया जल धारायें सूख गईं विद्युत नष्ट हो गई सम्पूर्ण गगन धूली अन्धकार से साफ़ हो गया :" (१)

ऐसे भयंकर अस्त्रों के साथ २ इन से बचने के लिये ऐसे २ कवच थे कि जिनके भीतर लोहे की गोलियां नहीं घुसती थी। खाण्डव बन के रहने वाले असुर, राक्षस, गन्धर्व, पन्नग, यक्ष, सभी जातियें अर्जुन के कठिन शस्त्र प्रहार से कुपित होकर चक्र अश्य भुशुण्डी और अयःकणय आदि सामग्री ले कर रण के लिये बाहर निकले।" (२)

इसमें अयः कणय शब्द का अर्थ है जो लोह के कण अर्थात् गोलियों से बचावे।

विपतयो जनयन् मेघान् जलधारा समाकुलान् ॥ १४॥
ततोशनि मुचोघोरान् तडितस्तनित स्वनाम् ।
(महाभा—आदि० २३६)

(१) तद्विघातार्थमसृजत अर्जुनोप्यस्त्रमुत्तमम् ।
वायव्यभौम मन्त्र्याथ प्रतिपत्ति विशारदः ॥ १५ ॥
तेनेन्द्रशनिमेघानां वीर्यौजस्तद्वि नाशितम् ।
जलधाराश्चता शोषम जामुर्नेशुश्चविद्युतः ॥ १६ ॥
क्षणेन चाभवत्व्योम संप्रशान्त रजस्तमः ॥ १७ ॥
(महाभारत । आदि० २२९)

(२) उत्पेतुर्नादमतुलं मुत्सृजन्तो रणार्थिनः ।
अयः कणयचक्राश्च भुशुण्ड् युद्युत बाहवः ॥ २९ ॥
(महा० आदि । २२९)

७—मायायुद्ध—महाभारत काल में माया युद्ध भी होता था। शुक्र नीति में नालिकास्त्रादि से युद्ध करना माया युद्ध या असुर युद्ध कहा गया है। जैसा हम गत प्रकरण में दर्शा आये हैं। उसी माया युद्ध का वर्णन महाभारतकारने शाल्व राजा को तथा कृष्ण के द्वार का विजय के लिये किये युद्ध के वर्णन में दर्शाया है।

कृष्ण कथा सुनाता है कि शाल्वराजा माया युद्ध से मेरे साथ लड़ने लगा तब गदाएं, हल, प्रास, शूल, शक्ति और फरेस लोहे के बनी शक्ति वज्र, पाश, ऋष्टि वायू, पट्टिश, भुशुण्डियें बराबर मेरे पर पड़ने लगीं। मैंने उन का प्रतिरोध भी माया से ही किया। (३)

८—गिरि शिखरों से युद्ध—उस माया के नाश हो ४ जाने पर शल्व राज ने पर्वतके शिखरों से युद्ध करना आरम्भ किया। कुछ अन्धकार और प्रकाश सा हुआ दुर्दिन और

(३) मायायुद्धेन महतयोधयामास मा युधि।
ततो गदाहल प्रास शूलशक्तित परश्वधाः ॥ ३३ ॥
अयश्च शक्ति कुलिश पाशार्ष्टि कणयःशरा:।
पट्टिशाश्च भुशुन्ड्यश्च प्रापतन ह्यनिशंमयि ॥ ३४ ॥
(४) तामह माययैवाशु प्रतिगृह्य व्यनाशयम्।
तस्या हतायां मायाया गिरि शृङ्गैर्योधयत् ॥ ३५ ॥
ततोऽभवत् तमैव प्रकाशैव चाभवत्।
दुर्दिन सुदिनचैव शीतमुष्णं च भारत ॥ ३६ ॥
अङ्गारयां शुवर्षञ्च शास्त्रवर्षञ्च भारत।
एवं माया प्रकुर्वाणा योधयामास मां रिपुः ॥ ३७ ॥

सुदिन, गर्मी और सर्दी सी होने लगी अंगारे धूली और शस्त्रों की घर्षा होने लगी इस प्रकार माया करता हुआ वह युद्ध करने लगा। मैं सब जान कर माया ही से नाश करने लगा और फिर मैंने सब बाणों से उसे छा दिया। तब आकाश में सैकड़ों सूर्य और सैकड़ों चन्द्र और हज़ारों तारें दीखने लगे। (१) तब दिन है या रात है इसका पता नहीं चलता था। तब मैंने चक्कर में पड़ कर प्रज्ञास्त्र का प्रयोग किया।

९—प्रज्ञास्त्र—यह मेरा अस्त्र आन्धी से कपास की न्यायी उड़ गया।

१०—आकाश युद्ध—"इस प्रकार वह पुरुष व्याघ्र युद्ध करता हुआ मध्य अकाश में आगया। ऊपर से उसने शतघ्नी गदाएं चमकते हुए शूल, मुसल, और तलवारों की वर्षा करदी।

---

(१) ततोऽव्योम महाराज शतसूर्य मिवाभवत्
शतचन्द्रं चकौन्तेय सहास्त्राय ुततारकम् ॥ ३९ ॥

ततोनाःज्ञायनदिवा तदा रात्रं तथादिशः ॥
(महा भा०, वन० अ० २०)

ततोहं मोहमापन्नः प्रज्ञास्त्रं समयो नयम्।
ततस्त्र दस्त्रं कौन्तेय धूतं फलमि वानिलैः ॥ ४० ॥
(महा० वन० अ० २०)

एवं सपुरुष व्याघ्रः शाल्वराजो, महारिपुः
युद्‌ यमानो मयासंख्ये वियद्‌भ्यागमत् पुनः ॥ १ ॥
ततः शतघ्नीश्च महागदाश्चदीप्तां श्चशूलाम्मुसलानसीश्च।
चिक्षेपरोषान्मयि मन्द बुद्धिः शाल्वो महाराज जयाभि कांक्षी ॥ २ ॥

११—शब्द साह अस्त्रः—फिर मैंने ऊपर जाने वाले बाण फेंका । उन के भय से शाल्व राज अन्तर्धान माया से छिप गया। मुझे यह देख अचरज हुआ। ऐसा चकित मुझ को देख कर दानवों के संघों ने बड़ा भयानक आकार बनाकर बहुत शोर मचाया। तब मैंने बड़ी शीघ्रता से शब्दसाह अस्त्र का प्रयोग किया। इससे शब्द सब उनका रुक गया और इस अस्त्र से जिस २ ने हल्ला मचाया था जलते हुवे सूर्य सदृश तथा शब्द के साधनों वाले बाणों से मारे गये। उन शब्दों के शान्त होने पर वे फिर एक ओर शब्द उठा। मैंने उधर भी बाणों से प्रहार की इस प्रकार दशों दिशाएं असुरों के शोर से भर रही थी उन सब को मैंने मार दिया।२

१२—शिला वर्षण (पर्वत वर्षण) फिर दैत्य शाल्व राज ने शिला वर्षा कर मेरा मार्ग रोक लिया। और उस पर्वतों की, वर्षा कर कर मुदीम की पहाड़ की न्यायी दबा दिया।

---

(२) ततोऽस्त्रं शब्द साहं वैः त्वरमाणो महारणे ।
प्रयोजयं तद् वधाय ततः शब्द उपारमत् ।। ।। ९ ।।
हतास्ते दानवाः सर्वे यैः स शब्द उदीरितः ।
शरैरादित्यसंकाशैर्ज्वलितैः शब्दसाधनैः ।।
एवं दशदिशः सर्वास्तिर्यगूर्ध्वश्च भारत ।
नादयामासुर सुरास्ते चापिनि ह तामया ।। १८ ।।
(महा० वन० अ० २२)

१३—वज्रास्त्र—तब मैंने इन्द्र का प्रिय अस्त्र सब पत्थरों को तोड़ने वाला वज्र उठाकर सब पर्वतों का संहार किया पर्वतों के भारसे मेरे घोड़े थक गये, और कांपने लगे। फिर सूतदारुक के कहने पर मैंने सब दानवों के नाश करने वाले आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया।

१४—आग्नेयास्त्र—यह अस्त्र यक्ष,राक्षस दानव और राजाओं को भी प्रतिपक्ष में भस्म कर देता है। (१)

१५—चक्र "फिर मैंने छुरे कैसे तेज धार वाला शुद्ध निर्मल मन्त्र पढ़कर "शाल्वराज को मार" ऐसा कहकर छोड़ा, छोड़े हुए चक्र का रूप ऐसा था जैसा युग के अन्तकाल का गिरता हुआ दूसरा सूर्य हो। चक्र ने शाल्व राज को बीच में से काट दिया जैसे आरा काठ को काट देता है। और शाल्वराज

---

(१) ततो लोकान्त करणो दानवो दारुणाकृतिः।
शिलावर्षेण महता सहसा मां समावृणोत् ॥ १० ॥
सोऽहं पर्वत वर्षेण वाध्यमानः पुनः पुनः।
वल्मीक इव राजेन्द्र पर्वतोपचितोऽभवम् ॥ ११ ॥
ततोऽप्रतिहतं दिव्यमभेद्यमति वीर्यवान्।
आग्नेयमस्त्रं दयितं सर्वसाहं महाप्रभम् ॥ २८ ॥
यायोजयंस्तत्र धनुषा दानवान्तकरं रणे।
यक्षाणां राक्षसानाञ्च दानवानाञ्चसं युगे।
राज्ञाञ्च प्रतिलोमानां भस्मान्त करणं महत् ॥ ३० ॥
(महा० वन० अ० २२)

के गिरने पर चक्र फिर मेरे हाथ में आगया" (२)

इस प्रकार शाल्वराज के और कृष्ण के युद्ध में उपरोक्त अस्त्रों का कैसा आश्चर्यकर प्रयोग पाठकों ने देख लिया; जिसमें शिलावर्षण, असिवाणादि वर्षण तथा शब्द साहास्त्र का अति अद्भुत दृश्य विस्मय उत्पन्न करता है।

इन्द्रकील पर्वत पर तपश्चर्या करने से प्रसन्न भगवान शङ्कर ने अपना पाशुपतास्त्र का अर्जुन को उपदेश किया। उसके विषय में यही उल्लेख प्राप्त होता है कि:—

१६—पाशुपतास्त्र—हे अर्जुन ? इस अस्त्र को सहसा कमजोर पुरुष पर मत छोड़ना क्योंकि अल्प तेज वाले पुरुष पर छोड़ा गया यह अस्त्र सम्पूर्ण जगत् का नाश कर देता है। इस सचराचर जगत् में इस से कोई बच नहीं सकता। यह अस्त्र मन से, चक्षु से, वाणी से और धनुष से शत्रु

---

(२) क्षुरान्तममलं चक्रं कालान्तकयमोपमम् ।
अनुमन्त्र्याहमतुलं द्विषतां विनिबर्हणम्
जहि शाल्वं स्ववीर्येण येचात्र रिपवो मम ।
इत्युक्त्वा भुजवीर्येण तस्मै प्राहिणवं रुषा ॥ ३२ ॥
रूपं सुदर्शनस्यासीदाकाशे पततस्तदा ।
द्वितीयस्येव सूर्यस्य युगान्ते प्रपतिष्यतः ॥ ३३ ॥
तत्समासाद्य नगरं सौमं व्यपगतत्विषम् ।
पारयामास क्रकचो मध्येन दार्विवोच्छ्रितम् ॥ ३४ ॥
तस्मिन्निपतिते सौमे चक्रमागात् करं मम ॥ ३५ ॥
(महा० वन० २२)

पर छोड़ा जाता है।" यह सुन कर अर्जुन विनय पूर्वक बोला कि पढ़ाओ। शम्भुने रहस्य और निवर्त्तनों के सहित उस अस्त्र, मानो मूर्त्तिमान यम हो—का उपदेश किया। उसके बाद वह अस्त्र घोर रूप से जलता हुआ घोर रूप में मूर्त्तिमान होकर प्रकट हुआ सब देवदानवों ने देखा।" (१)

१७—दण्डास्त्र—भगवान् शम्भु के अन्तर्धान हो जाने पर प्रसन्न होकर इन्द्र आया और उसने दण्डास्त्र दिया और कहा कि जिसका कोई प्रतिकार नहीं ऐसा दण्ड ग्रहण कर। इस अस्त्र से तू बहुत कार्य करेगा। अर्जुन ने विधिवत मन्त्र उपचार और मोक्ष और निवर्त्तन सहित उसका ज्ञान करलिया। (२)

---

(१) नत्वेतत्सहसा पार्थ योक्तव्यं पुरुषे क्वचित्।
जगद्विनाशयेत्सर्वमल्पतेजसिपातितम् ॥ १७ ॥
अवध्योनामनास्त्यस्य त्रैलोक्ये सचराचरे।
मनसाचक्षुषावाचा धनुषाच निपात्यते ॥ १८ ॥
ततस्त्वध्यापयामास सरहस्य निवर्त्तम्।
तदस्त्रं पाण्डव श्रेष्ठं मूर्तिमन्तमिवाऽन्तकम् ॥ २० ॥
यथास्त्रं जाज्वलद्घोर पराऽवस्यामितौजसः।
मूर्त्तिं मद्वैस्थितं पार्थं ददर्शुदेव दानवाः ॥ २४ ॥
(महा० वन० अ० ४०)

(२) गृहाणास्त्रं महाबाहो दण्डमप्रतिवारणम्।
अनेनास्त्रेण सुमहत् त्वं हि कर्म करिष्यसि ॥ २६ ॥
प्रति जग्राहतत्पार्थो विधिवत्कुरुनन्दन।

इसके अनन्तर पश्चिम दिशा वरुण भी प्रसन्न होकर आये उन्होंने अपने वारुण पाशों का उपदेश किया। और कहा:—

८१—वारुणपाश—मेरे से धारण किये गये इन वारुण-पाशों का जिनका कोई प्रतिकार नहीं तू रहस्य और निवर्त्तनों सहित धारण कर। इन्हीं पाशों से हेवीर ? मैंने तारकासुर के संग्राम में सहस्रों दैत्यों को बांध दिया था। इस लिये हे महावीर ? मेरे प्रसाद से जब तू इस अस्त्र कारण में प्रयोग करेगा तबासब भूमि क्षत्रिय रहित हो जायगी इसमें कोई सन्देह नहीं।" (३)

उपरोक्त तीनों अस्त्र कितने ही भयङ्कर हैं। एक भी सर्व संहार का दावा करता है। पाशुपतास्त्र की विशेषता यही है कि वह वाणी, मन, चक्षु और धनुष चारों साधनों से चलता है। क्या होगा कैसा होगा सो दिव्यास्त्र के विषय में व्यासही मौन है तो हमारी कथा ही क्या है ?

समन्त्रं सोपचारञ्च समोक्षविनिवर्त्तनम् ॥ २७ ॥

(महा० वन० अ० ४१)

मयासमुद्यतान् पाशान् वारुणानति वारितान्।
प्रतिगृह्णीष्वकौन्तेय सरहस्य निवर्त्तनम् ॥ ३० ॥
एभिस्तदामयावीर संग्रामे तार का मये।
दैतेयानां सहस्राणि संयतानि महात्मनाम् ॥ ३१ ॥
अनेनत्वं यदास्त्रेण संग्रामे प्रचरिष्यसि।
तदानिःक्षत्रिया भूमिः भविष्यति न संशयः ॥ ३३ ॥

(महा० वन० अ० ४१)

१९—अन्तर्धानास्त्र—अब सबसे अधिक विचित्र धनाध्यक्ष का दिया हुआ अन्तर्धानास्त्र है। इसका वर्णन पाठक विशेष ध्यान से पढ़ें। धनाध्यक्ष बोले—"मुझसे भी यह अस्त्र लेलो। इससे तू दुर्योधन की सेनाओं को दग्ध करदेगा। यह मेरा अन्तर्धानास्त्र है यह ओज और तेज को बढ़ाने वाला है और सब को सुलाने वाला और शत्रुओं का नाश करने वाला है। महात्मा शङ्कर ने त्रिपुर का नाश करते समय इस अस्त्र से सब असुरों को दग्ध किया था।" (१)

इस अस्त्र से प्रस्वापन और शत्रु का दाह होता था। यही विशेषता है। एक और भयंकर महास्त्र आप के सामने रखता हूँ जिसके देखते हुये और भी आश्चर्य होगा वह अशनि अस्त्र है। इन्द्रलोक से अर्जुन के लिये दिव्य रथ और दिव्यास्त्र भी आये। उनमें अशनि का वर्णन भगवान् व्यास इस प्रकार करते हैं।

२०—अशनि—"वहां अशनियें भी आयीं जिनमें चक्र लगे हुए थे और मन भरके गोले छूटते थे। वायु में बहुत बड़ा फटाका बजता था और बड़े धड़ाके के साथ बहुत बड़ा

(१) तदिदं प्रति गृह्णीस्व अन्तर्धानं प्रियं मम
ओजस्तेजोद्युतिकरं प्रस्वापनमरातिनुत ॥ ३९ ॥
महात्मना शङ्करेण त्रिपुरं निहतं पुरा।
तदैतदस्त्रं निर्मुक्तं येन दग्धामहासुराः ॥ ४० ॥
(महा० वन० अ० ४१)

लगता था। उसमें से जलते मुंह वाले नाग तथा श्वेत प्रस्थर भी छूटते थे।' (२)

कहिये पाठक ! मन २ का गोला छोड़ने वाली तोपों से ये अस्त्र क्या कुछ कम हैं। कौन सा ऐसा चिन्ह है जो तोप चण्डी में नहीं मिलता ?. इस प्रकार के अर्जुन के सीखे हुए अस्त्रों के वर्णन करते हुए हम इस प्रकरण को समाप्त करते हैं दूसरे प्रकरण में महाभारतान्तर्गत शेष अस्त्रोंका भयंकर प्रयोग भी पाठकों को भेंट किया जायगा।

---

(२) तथैवा शवयश्चैवै चक्रयुक्ता स्थुला गुड़ाः।
वायुस्फोटाः सविर्घाता महामेधस्वनास्तथा ॥ ५ ॥
तत्र नागा महाकाया ज्वालितास्याद्युग्ररुषः
सिताभ्रकूट प्रतिमाः संहताश्च तथोबलाः ॥ ६ ॥

(महा० वन० ४३)



नवम प्रकरण

महाभारत काल में

महास्त्रों का प्रयोग:—

गत प्रकरण में हमने बहुत से अस्त्र पाठकों के समक्ष रखे शेष इस प्रकरण में देखिये।

१—वारुणास्त्र:—आचार्य द्रोण ने सब शिष्यों को कमण्डलु दिया। परन्तु अपने पुत्र को अधिक सिखाने की इच्छा से कलसी दिया। जिससे वह शीघ्र ही भर कर ले आया करे यह देख कर अर्जुन अपने कमण्डलु को भी वारुणास्त्र से शीघ्र भर कर अश्वत्थमा के साथ ही गुरु के पास आजाता था। (१)

इससे प्रतीत होता है कि वारुणास्त्र से जल भरना ही प्रयोजन था परन्तु अन्य स्थान पर वारुण शस्त्रसे मारने तथा प्राण निकालने का भी कार्य लिया जाता था जैसा आदि पर्व में भीष्म ने शाल्वराज के साथ युद्ध करते हुए छोड़ा उससे शाल्वराज के चारों घोड़े पीस दिये। (२)

---

(१) ततः स वारुणास्त्रेण पूरयित्वा कमण्डलुम्।
सममाचार्य पुत्रेण गुरुम्येतिफाल्गुनः ॥१८॥
(महा० आदि० १३४)

(२) ततोऽस्त्रं वारुणं सम्यग् योजयामास कौरवः।
तेना श्वाश्चतुरो ऽ मृद्नाच्छाल्वराजस्यभूपते ॥४२॥
(महा० आदि० १०२)

२—इन्द्रास्त्र—इसी प्रकार इन्द्रास्त्र से भी भीष्म ने उसके घोड़े ही मार दिये (३)

उद्योग पर्व में भीष्मपितामह रामाचार्य जामदग्न्य से हुए युद्ध की कथा सुनाते हुए अपना अस्त्र युद्ध सुनाते हैं उसमें जामदग्न्य ने बहुत से अस्त्रों का प्रयोग किया और सब का प्रतीकार भीष्म ने अस्त्रों ही से किया। भीष्म ने वायव्य छोड़ा रामने गुह्यकास्त्र से प्रतीकार किया। मैंने आग्नेयास्त्र छोड़ा रामने वारुणास्त्र से प्रतीकार किया। (४)

३—शीघ्रास्त्र—भीष्म बोले कि मैंने फिर युद्ध का प्रतीकार करने वाला शीघ्रास्त्र चलाया। तब उसके अन्दर रखे हुए बाणों ने सारे आकाश में घेरा डाल लिया। यहां तक कि सूर्य की धूप भी हट गयी। बादलों से हवा रुक गयी सूर्य की किरणों और हवा के हंकारने से और चोट के प्रभाव से उनमें स्वयं ही आगपैदा हो गयी। और सारे बाण भस्म हो कर पृथ्वी पर गिरे। (१)

---

(३) अस्त्रैश्चाप्यन्यैन्द्रेण न्यवधीत्तुरगोत्तमान् ॥ ४५

(४) ततोहमस्त्रं वायव्य जामदग्न्ये प्रयुक्तवान् ।
प्रत्याजघ्नेचतद्रामो गुह्यकास्त्रेण भारत ॥ ११ ॥
ततोहमस्त्रयाग्नेयमनुमन्त्र्य प्रयुक्तवान् ।
वारुणेनैवतद्रामो वाययामास वै विभुः ॥ १२ ॥
(उद्योग० १८१)

(१) ततोहमपिशीघ्रास्त्रं समर प्रतिवारणम् ।

इसमें शीघ्रास्त्र से छोड़े गये वाण अस्त्र में पहले से ही अन्दर रखे रहते थे पीछे उनका सहसा छूटना, आकाश में हवा और धूप तथा वेगसे उनका स्वयं जल उठना कुछ आग्नेय माया का अलौकिक चमत्कार दर्शाते हैं।

४—दो ब्रह्मास्त्रों का संघट्टन—"जामदग्न्य रामने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। उसके प्रतीकार में भी ब्रह्मास्त्र इधर से भीष्म ने छोड़ा। दोनों बीच गगन में फूट गये। उस समय का वर्णन है कि मध्य में दोनों के केवल तेज ही तेज था। सम्पूर्ण नभोमण्डल जल उठा और दशोंदिशाएं धूम्र से भरगयीं। विमान से जाने वाले भी आकाश में न ठहर सके।" (२)

अवासृजं महाबाहोतेऽन्तराधिष्ठिताः शराः ॥ ३१ ॥
रामस्यमम चैवाशु व्योमभावृत्य समन्ततः ।
नस्म सूर्यः प्रतपते शरजालसमावृतः ॥ ३२ ॥
मातरिश्वा ततस्तस्मिन् मेघरुद्ध इवाभवत् ।
ततो वायोः प्रकम्पाच्च सूर्यस्य च गभस्तिभिः ॥ ३३ ॥
अभिघात प्रभावाच्च पावकः समजायत ।
तेशराः स्वसमुत्थेन प्रदीप्ताश्चित्र भानुना ॥ ३४ ॥
भूमौ सर्वे तदाराजन् भस्मभूताः प्रपेदिरे ।
(महाभा० उद्यो० अ० १८१)

(२) प्रादुश्चक्रे ततो ब्राह्मं परमास्त्रं महाव्रतम् ।
ततस्तत्प्रतिघातार्थं ब्राह्ममेवास्त्र मुत्तमम् ॥ १५ ॥
मया प्रयुक्तं जज्वाल युगान्तमिवदर्शयत् ।
तयोर्ब्रह्मास्त्र योरासीदन्तरावै समागमः ॥ १६ ॥

५—प्रस्वापास्त्र—इस युद्ध का अन्तिम घोर अस्त्र प्रस्वाप है। इसको स्मरण करते ही सब त्रैलोक्य ने मिलकर भीष्म से कहा कि बस उस अस्त्र को मत छोड़ो। नहीं तो त्रैलोक्य भस्म हो जयगा। (३)

६—ब्रह्मास्त्रशर—सेनापति श्वेतने भीष्म से बड़ा विकट युद्ध किया। श्वेत का विजय काल आया देख भीष्मने ब्रह्मास्त्र शरका आयोजन किया। उस बाण पर लोम लगे थे। ब्रह्मास्त्र से फेंका हुआ वह शर जलती अग्नि के समान श्वेतराज का कवच भेद कर महा अशनि के सदृश जलता हुआ पृथिवी में घुस गया।" (१)

७—पार्जन्यास्त्र—रण में अलौकिक पराक्रम दिखाकर शरशय्या पर भीष्म लेटे हुए थे। सब राजा लोग सेवा के लिये उपस्थित थे तब भीष्म ने अर्जुन को ही योग्य चुनकर उससे तृषा

अस्त्रम्प्राप्यपरामञ्चभरतसत्तम।
ततो व्योम्नि प्रादुरभूत् तेजस्यहिकेवलम्॥ १७॥
भूतानिचैव सर्वाणि जग्मुरार्त्तिं विशाम्पते॥ १८॥

प्रजज्वाल नभोराजन् धूमायन्तेदशोदिशम्।
तस्याह्नु मन्तरिक्ष च शकुराकाशगास्तदा॥ १८॥

(म० उ० अ० १८५)

(३) तेस्त्रानिवारन्त्यद्य प्रस्वापंमा प्रयोजय॥ ३॥

(म० उ० अ० १८६)

(१) ब्रह्मास्त्रेण सुसंयुक्तं तंशर लोमवाहिनम्।

शान्ति के लिये जल मांगा। उस पर "अर्जुन ने दीप्त शर को मन्त्र पढ़कर पार्जन्य अस्त्र से लगाकर सब लोगों के देखते भूमि में प्रहार किया। भीष्म के दायें पार्श्व में पानी की विमल श्वेत धारा उछल पड़ी। उसी जल धारा से पार्थ ने भीष्म को तृप्त किया।" (२)

८—लोहे के गोले—महा भारत काल के युद्ध में अस्त्रों से लोहों के गोलों को भी फेंका जाता था। अतः उनको भी सेनाएं बहुत सी मात्रा में अपने साथ रखती थीं जिस प्रकार कि अन्य शस्त्रों को। द्रोण के बनाये चक्रव्यूह में लगे योद्धाओं के पास गदा आदि शास्त्रोक्त साथ ही साथ अयोगुड़ अर्थात् लोहे के गोले भी थे।" (३)

विकृष्य बलवान् भीष्म समावर्त्त दुरासदम् ॥ १०७ ॥
सतस्य कवचं भित्वा ज्वलन् दग्निसमौजसः।
जगाम धरणी वाणो महाशनिरिव ज्वलन् ॥ १०८ ॥
(महा॰ भी० अ० ४८)

(२) सन्धायत्तगरं दीप्त मभिमन्त्र्य सपाण्डवः।
पार्जन्यस्त्रेण संयोज्य सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ २२ ॥
अविध्यत् पृथवीं पार्थः पार्श्वे भीष्मस्य दक्षिणे।
उत्पपात ततो धारा वारिणो विमलाशुभा ॥ २३ ॥
अतर्पयत्ततः पार्थः शीतया जलधारया ॥ २४ ॥
(महा० भी० अ० १२३)

(३) सगदायो गुड़ प्रासाड् सर्द्धि तोमर पट्टिशान ॥ ४ ॥
(महा० द्रोण० अ, ३९८)

९—महाशक्ति—शक्ति के वर्णन में पाठक जन पढ़ आये हैं कि शक्ति गज पर्वत भेदनी होती है। अर्जुन ने शक्ति छोड़ी उस का वर्णन महाभारतकार करते हैं कि:—पर्वतों को भी भेदने वाली स्वर्ण दण्ड से जड़ी बहुत भयानक आठ घण्टों वाली फेंकी। वह राजा की भुजा से फेंकी गयी सांप के सादृश गगनें जलाती हुई जलते हुए मुख से द्रोण के पास पहुँची।"

१०—राक्षसीमाया तथा शस्त्र वृष्टि—अलम्बुष घटोत्कचादि नान्त राक्षस राजाओं ने भी महाभारत युद्ध में भाग लिया था। ये राक्षस लोग माया युद्ध करने में अत्यन्त चतुर थे। उनकी अविज्ञेय चमत्कारिणी माया शक्ति से बहुत संहार होता था। अलम्बुष देश का राजा राक्षस अलम्बुष अपनी माया से शस्त्रों की वृष्टि करता है जिसमें "गगन से शरधारा हजारों की संख्याओं में शक्तियें कुणप, प्रास, शूल, पट्टिश, तोमर, शतघ्नियें, परिघ, भिन्दिपाल, कुठार, शिला, तलवार, लोह के गोले ऋष्टि और वज्र गिरे। यह राक्षसों की छोड़ी शस्त्र वृष्टि अति भयानक थी" इससे पाण्डवों के हाथी घोड़े पदाति सभी मारे गये।" (१)

निपेतुर्गगनाच्चैव शरधाराः सहस्रशः।
शक्तयः कुणपाः प्रासाः शूलपट्टिशतोमराः ॥ ३० ॥
शतघ्न्य परिघाश्चैव भिन्दिपालाः परश्वधाः।
शिलाः खड्गाः गुडाश्चैव ऋष्टिर्वज्राणि चैवहि ॥ ३१ ॥
स राक्षसविसृष्टा शस्त्र वृष्टि सुदारुणा ॥ ३१ ॥
(महा० द्रोण०, १०७ तथा अ० १८० श्लो० २५—२३)

११-घटोत्कच की माया—राक्षसी माया अत्यन्त अद्भुत होती है। कुछ इस का चमत्कार भी देखिये कि युद्ध में किस प्रकार आश्चर्य कर के दिखलाती है। "घटोत्कचने अपने बिगड़े २ रूप बनाकर कर्ण के सब दिव्यास्त्रों को ग्रस लिया। कभी सैकड़ों टुकड़ों में कट कर गिर पड़ा। कभी नये २ बहुत से शरीर धारण कर सब दिशाओं में दीखता था। कभी सैकड़ों सिर और सैकड़ों पेट बनाकर पर्वत के सदृश हो जाता था। कभी अंगुष्ठमात्र होकर आकाश में उड़ जाता था। कभी फिर पृथ्वी फाड़कर पानी में डुबकी मारता था और फिर कहीं निकलता था। कभी रथ पर कभी आकाश में दिखायी देता था। कभी पहाड़ हो जाता था। कर्ण ने इसको शस्त्रों से मारा। फिर वह बादल बन गया और ऊपर से ओले बरसाने लगा। इस पर कर्ण ने वायव्यास्त्र से उसे उड़ाया फिर वह महाकाय हो गया। इस प्रकार से कर्ण ने घटोत्कच को बहुत तंग किया।" (१)

१२—राक्षस प्रयुक्त अस्त्र अशनि—इसी मायायुद्ध के बाद घटोत्कचने बड़ी भयानक अशनि फेंकदी" वह आठ चक्र वाली बड़ी भयानक, रुद्र की बनायी हुई थी। उस अशनि से घोड़े, रथ और ध्वजा सब जलकर भस्म हो गये।" (२)

---

(१) देखो महाभारत द्रोण पर्व अ० १७६ श्लोक ५७—८४ तक०

(२) संचिक्षेप पुनः क्रुद्धः सूतपुत्राय राक्षसः।
अष्ट चक्रां महा घोरामशनिं रुद्रनिर्मिताम् ॥ ८१ ॥

१३—गोले फेंकने वाली हाथी की सूंड़ जैसी शतघ्नियें:—"इसी माया युद्ध में इस प्रकार की शतघ्नियों की वर्षा की गयी थी जिनका स्वरूप सूण्ड का सा था और फेंकने का गोला पत्थर का था।" (२)

१४—नारायणास्त्र—रण में द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न के हाथ से द्रोण के मारे जाने पर पितृ विरह से दुःखि तथा क्रुद्ध द्रोण पुत्र अश्वत्थामा ने अपने पिता का बदला लेने के भाव से अगले दिन नारायणास्त्र का प्रयोग किया। इसका वर्णन पढ़ने से प्रतीत होता है कि एक बड़ी भारी मशीनरी की मशीनरी शत्रु के संहार में लग गयी हो।

"उसके बाद द्रोण पुत्रने नारायणास्त्र का प्रयोग किया। फिर उसमें से दीप्ताग्रबाण सहस्रों की संख्या में निकले। उन बाणों से दिशाएं, आकाश, सैन्य और सब स्थान भर गये। उसके बाद आकाश में चमकते तारों के सदृश कृष्ण लोह (सीसे) के गोले निकले। फिर चार चक्रोंवाली विचित्र शतघ्नियें चलीं फिर गोले पड़े। क्षुरे के धारवाले चक्र सूर्यमण्डल की न्यायी चमकते हुए निकले। पाण्डवों और पाञ्चाल की सेनाएं शस्त्रों से भरे आकाश को देख कर बहुत घबराईं।

साश्वसूतं ध्वजं यानं भस्म कृत्वा महा प्रभा।
विवेशवसुधां भित्वा क्षुरास्तस्य शिलीमुखाः ९६ ॥

(महा० द्रोण १७६)

(२) शूलांशु गुणशतघ्नगुड़ाः शतघ्न्यः ॥ २७ ॥

(द्रोण० अ० १८०)

जितना ही जितना पाण्डवों के महारथ लड़ते थे उतना ही उतना वह अस्त्र भी बढ़ता गया। इस नारायण अस्त्र से रण में मारे गये लोग आग से मानों भुने जा रहे थे ऐसा मालूम होता था। शिशिर बीत जाने पर जिस प्रकार तृणों को आग जलाती है उसी प्रकार अस्त्र ने पाण्डवों की सेना को जलाया।" (१)

---

(१) प्रादुश्चक्रे ततो द्रौणिरस्त्रं नारायणं तदा।
अभिसंधाय पाण्डूनां पाञ्चालानां च वाहिनीम्॥ १५॥
प्रादुरासंस्ततो बाणा दीप्ताग्राश्च सहस्रशः।
पाण्डवान् क्षपयिष्यन्तो दीप्तास्या इव पन्नगाः॥ १६॥
ते दिशः खं च सैन्यं च समावृण्वन् महाहवे।
मुहूर्ताद् भास्करस्येव राजँल्लोके गभस्तयः॥ १७॥
तथा परे द्योतमानाः ज्योतींषीवाम्बरे मले।
प्रादुरासन् महीपाल कार्ष्णायसमया गुडाः॥ १८॥
चतुश्चक्रा द्विचक्राश्च शतघ्न्योऽथ गुडा गदाः।
चक्राणि च क्षुरान्तानि मण्डलानीव भास्वतः॥ १९॥
शस्त्राकृतिभिराकीर्णमतीव भरतर्षभ॥
दृष्ट्वान्तरिक्षमाविग्नाः पाण्डुपाञ्चालसृञ्जयाः॥ २०॥
यथा यथा ह्ययुध्यन्त पाण्डवानां महारथाः।
तथा तथा तदस्त्रं वै व्यवर्धत जनाधिप॥ २१॥
वध्यमानास्तथास्त्रेण तेन नारायणेन वै।
दह्यमानानलेनेव सर्वतोऽभ्यर्दिता रणे॥ २२॥
यथा हि शिशिरापाये दहेत् कक्षं हुताशनः।
तथा तदस्त्रं पाण्डूनां ददाह ध्वजिनीं प्रभो॥ २३॥

१५—नारायणास्त्र का प्रतीकार—महास्त्र के घोर संहार को देखकर इसका सामना करना दुस्कर हो गया। पाञ्चाल राजने यही अनुमति दी और सेना को आज्ञा दी कि सब कोई अपने हथियार को छोड़कर अपने रथों से उतर पड़ो। अब इस नारायणास्त्र का यही प्रतीकार है क्योंकि शस्त्र छोड़ कर रथ से उतर जाने पर यह शस्त्र निःशस्त्रों को नहीं मारता है। इसपर सब कोई अपने अस्त्र शस्त्र छोड़कर नीचे उतर पड़े परन्तु दर्प से भीम ने शस्त्र त्याग न किया। (२)

१६—महास्त्र का भीम पर प्रकोप—निःशस्त्रों को छोड़ महास्त्र का प्रकोप एक मात्र भीम-पर ही रह गया। भीम भी अश्व, सूत और रथ सहित द्रोण पुत्र के छोड़े अस्त्र में ढका हुआ आग में पड़ी आग के सदृश चमकता था। रात बीतने पर जिस प्रकार तारे अस्ताचल की ओर जारहे हों उसी प्रकार वाण भीमसेन पर पड़ते थे: भीम, भीम का रथ, भीम के घोड़े ये सभी आग के बीच में थे। (१)

---

(२) शीघ्रं न्यस्यत शस्त्राणि वाहेभ्यश्चावरोहत।
एष योगोऽत्रविहितः प्रतिघाते महात्मनः॥ ३८॥
द्विपाश्वस्यन्दनेभ्यश्च क्षितिं सर्वेऽवरोहत।
एवमेतन्नवोहत्यास्त्रं भूमौ निरायुधान्॥ ३९॥
ततः शस्त्राणि दिव्यानि समुत्सृज्य महीतले।
अवारोहन्रथेभ्यश्च हयेभ्यश्च सर्वशः॥ ६१॥
(महा० द्रोण० २००)

(१) तेषु निःक्षिप्त शस्त्रेषु वाहनेभ्यःच्युतेषु च।

इस प्रकार पाठक गण देख सकते हैं कि नारायणास्त्र का कितना प्रताप था। इतना मन्त्रास्त्र का बल कोई कम चमत्कारिक नहीं है।

इसी अस्त्र का पुनः प्रयोग—शस्त्र के शान्त हो जाने पर दुर्योधन ने अश्वत्थामा को कहा कि इस अस्त्र का फिर प्रयोग करो। तिस पर द्रोण पुत्र बोले कि:—

"यह अस्त्र छोड़ा हुआ फिर लौट कर नहीं आता। यदि लौटकर आता भी है तो प्रयोग करने वाले का भी निश्चय से नाश ही करता है।" (२)

तदस्त्रं वीर्यं विपुलं भीम मूर्धन्यथापतत् ॥ ६२ ॥

(महा० द्रो० अ० २००)

सोऽस्त्रेण तेनास्त्र रथो भीमो द्रोणपुत्रास्त्र संवृतः।
अभवदग्निरिवन्यस्तो ज्वालामाली सुदुर्दृशः ॥ ३ ॥
यथारात्रिक्षये राजञ्ज्योतीष्यस्तगिरिंप्रति।
समापेतुस्तथा बाणाः भीमसेनरथं प्रति ॥ ४ ॥
सहिभीमोरसयाब्रह्मस्यहयाः ध्रुतश्च मारिष।
संवृतोद्रोण पुत्रेण पावकान्तर्गतोभवत् ॥ ५ ॥

(महा० द्रोण० अ० २०१)

२—नैतदावर्त्तते राजन् अस्त्रं द्विर्नोपपद्यते।
आवृत्ते हि निहन्त्येतत्प्रयोक्तारं न संशयः ॥ २७ ॥

(महा० द्रोण अ० २०२

इस प्रकार महा भारतान्तर्गत सभी बड़े अस्त्रों का चमत्कारिक प्रयोग हमने पाठकों के समक्ष रख दिया अब अगले अध्याय में मन्त्र शास्त्र से कतिपय अस्त्रों का साधन और प्रयोग और चमत्कार दिखाया जायगा जिसमें अन्धविश्वास से ग्रस्त कवियों की वाणी का भी अलौकिक चमत्कार निदर्शन रूप में दिखावेंगे और फिर इस सम्पूर्ण प्रकरण की इति श्री की जायगी।

इति नवम प्रकरण

दशम-अध्याय

मध्यकाल-साहित्य

मन्त्र चमत्कार

महास्त्रों का रण में साक्षात् कि योग पाठकगणों ने दत्तचित्त हो कर दर्शन किया। परन्तु अभी यह उत्सुकता शान्त नहीं हुई कि इन महास्त्रों को किस प्रकार साधा जाय। मन्त्र मुक्त तथा यन्त्र मुक्त अस्त्रों को किस प्रकार वश में किया जाय यह वास्तव में बड़ा रहस्य है। इसका जानना भी ब्रह्मज्ञान के सदृश अनिर्वचनीय तन्त्र विद्या की तरह अत्यन्त गुप्त तथा लुप्त और जादू की तरह जानकार के हाथ में खेलती है। इसका उल्लेख ही बहुत कम ग्रन्थकारों ने किया है। हमारे सामने केवल तीन धनुर्वेद ही वर्त्तमान उपलब्ध हैं! प्रथम स्कन्दोक्त धनुर्वेद, द्वितीय विश्वामित्र कृत धनुर्वेद और तृतीय

शार्ङ्गधर कृत धनुर्वेद संग्रह। इन तीनों में सब से अधिक सारिष्ठ शार्ङ्गधरका है। इससे हम पाठकों को उसी के आधार पर कुछ रहस्य सुनायेंगे। परन्तु इसके पहले कुछ साहित्य के अर्वाचीन प्रणेताओं के कुछ नये फोफले अविष्कारों पर भी दृष्टि निःक्षेप कीजियेगा जिससे चमत्कारक कोई भाग छूट कर पीछे शोक का हेतु न रहे। प्रथम किरात के बनाने वाले तरंगी कवि भारवी के अद्भुत कल्पनामय अस्त्रों का चमत्कार सुनिये:—

१—प्रस्वापनास्त्र:— अर्जुन ने किरात वेशधारी शिव के साथ युद्ध करते हुए इसी अस्त्र का प्रयोग किया। उसका वर्णन भारवि इस प्रकार करते हैं :—

"अनिवार्य वीर्य अर्जुन ने अपने शत्रुभूत किरात की सेना को नाश करने की इच्छा से शीघ्र ही प्रस्वापनास्त्र का ऐसा प्रयोग किया कि जैसा कि अर्धरात्र काल अन्धकार का प्रयोग करता है।"

(२) "इसके प्रयोग करने पर लगातार जलते वन से निकलते हुए धूएं के सदृश काली, सूर्य के प्रखर प्रकाश को ढांपती हुई अन्धकारमयी कालीछाया, बड़ी भारी वन-माला के सदृश निकली और उसने शिव की सेना को छालिया।

(३) उसने पहुँचते ही उनकी चतुरता को हर लिया और सभा जिस प्रकार नववक्ता की प्रतिभा को नाश कर देती है उसी प्रकार उसने भी सेना की सुधबुध भुलादी।

(४) उनके धनुष वैसे के वैसे ही रहगये।

(५) जैसे दैवयोग उलट जाने से हाथ से किये काम का फल भी निकल जाता है उसी प्रकार सेना के शस्त्रादि भी हाथ से निकल कर गिर पड़े।

(६) कोई तो सो गये और कोई पास के वृक्षों के साथ सहारा लेकर ही बैठ गये।

इसके प्रतीकार के लिए शिवने अपने तीसरे नेत्र की ज्योति चमका दी और इससे सब सेना की निद्रा टूट गयी और शस्त्रादि लेकर फिर लड़ने में कटिबद्ध हो गये।

२—भुजङ्गपाशः—अर्जुन ने अपना परिश्रम इस प्रकार विफल देख कर भुजङ्गपाशों का प्रयोग किया इससे:—

(१) सैकड़ों जीभें लप लपाते हुए बिजुली की तरह चञ्चल विष की आग उगलते हुए सापों की सेना आकाश में आ निकले।

(२) हाथी की सूंड़ के सदृश मोटे २ काले २ सापों की पंक्तियों से आकाश अद्भुत हो गया।

(३) उनकी फुंकारों के धूओं से सूर्य का तेज मन्दा पड़ गया।

(४) उनका प्रतीकार शिवजी ने गरुड के उत्पन्न करने के मन्त्र से किया।

३—गरुडास्त्रः—(१) उनके प्रकाशमान पक्षों की चमक से देवताओं के लोचन भी चौंधिया गये।

(२) सम्पूर्ण आकाश में गरुड़ ही गरुड़ चक्कर मारने लगे।

(३) उन गरुड़ों ने पहले छोड़े सांपों का नाश कर डाला।

(४) इस पर अर्जुन ने फिर अपने भुजंगपाश के व्यर्थ जान कर फिर आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया।

४—आग्नेयास्त्रः—(१) इसके प्रयोग से आंग भी शेर की नायीं अपनी ज्वालाओं से भभकती हुई बादल की पंक्तियों को तोड़ती फोड़ती हुई सम्पूर्ण आकाश में फैलने लगी।

(२) अपनी किरणों से सूर्य की किरणों को भी काटती हुई हर तरफ अपने चिंगारे फेंकती हुई टूटते फूटते पत्थरों की सी धधकती हुई आग मानो गरम सोने के पहाड़ बना रही थी या हर तरफ़ खिलेढ़ाको के जंगल रच रही थी। इसके संहार के लिये पिनाकपाणि शिवने जलास्त्र का प्रयोग किया।

५—जलास्त्र—(१) इससे पर्वताकार मेघ बिजुली कड़का २ कर नीचे मुख बहती नदी धाराओं के सदृश पानी फेंकने लगीं।

(२) इससे पहिले पहल पड़ा पानी गरम लोहे पर जल बिन्दुओं के सदृश प्रतप्त पृथ्वीतल पर पानी पड़ा। और आग शान्त हुई।

(३) जलती आग पर पानी पड़ने से जैसे उबलते पानी

की भाग और धूम निकलता है उसी प्रकार ऊपर फिर धूंआ ही धूंआ हो गया।

(४) आग चारों ओर छितरा गयी।

इस प्रकार सभी अस्त्रों का नाश हुआ देख कर अर्जुन ने फिर अपना धनुष ही लिया पर उसमें भी हताश होकर शंकर की स्तुति की जिसपर शंकर ने अपनी रौद्र अस्त्र दिया यह अस्त्र जलती आगसे ढका हुआ था। (१)

इसी का अनुचर भूत कवि माघ भी इसी के चरण चिन्हों पर चलता हुआ अपने शिशुपाल वधकाव्य के अन्तिम अंक में इन्हीं अस्त्रों का प्रयोग ऐसा ही दर्शाता है। परन्तु कृष्ण के गरुड़ ऊपर की ध्वजा के गरुड़ से ही कूद पड़े थे अन्धकार हटाने के लिये हार में लगे कौस्तुभमणि से प्रकाश निकला इत्यादि कवि हृदय सिद्ध नाना चमत्कार उठा कर रखे जा सकते हैं परन्तु इनमें वास्तविक न्यून लेश होने से हम इसे यहां ही समाप्त करते हैं। और धनुर्वेद के अद्भुत अस्त्रों की तथा तत्सम्बन्धी अन्य बातों की आलोचना करते हैं।

इति दशम प्रकरण

---

(१) देखो भारविकृत किरातार्जुनीय सर्ग ॥ १६ ॥
(२) माघ शिशुपाल वधसर्ग २० वां



एकादश-अध्याय

प्राचीन धनुर्वेद

धनुर्वेद का रहस्य अभी तक भी एक ऐसा रहस्य शेष है जिसका वास्तविक स्वरूप स्पष्ट नहीं हुआ। अतः इस अन्तिम प्रकरण में हम यही दिखाने का प्रयत्न करेंगे।

धनुर्वेद

प्रथम विश्वामित्र ऋषि ने चार पाद युक्त धनुर्वेद बनाया था। प्रथम पाद में शिष्यकी गुरुदत्त दीक्षा का वर्णन है, दूसरे पाद में शस्त्रास्त्रों का संग्रह है, तीसरे पाद में अस्त्रों का साधन है, चौथे पाद में शस्त्रास्त्रों का प्रयोग वर्णन किये हैं। प्रथम-पाद में धनुष का लक्षण धनुर्वेद का अधिकारी आदि का निरूपण है। धनुःशब्द यद्यपि तीर कमान में भी रुढ़ि से प्रसिद्ध है तौभी धनुष शब्द शस्त्र तथा अस्त्रों का वाचक भी समझा जाता है तथा प्रयोग किया जाता है।

इस प्रकार ये शस्त्र तथा अस्त्र मुक्त, अमुक्त, मुक्तामुक्त, और मन्त्र मुक्त चार प्रकार का होता है। खड्ग आदि अमुक्त, भाला, शल्य आदि मुक्तामुक्त शर आदि मन्त्र मुक्त और मुक्त कहाते हैं।

मुक्त अस्त्र कहाते हैं, अमुक्त शस्त्र कहाते हैं। अस्त्र भी ब्रह्मा, विष्णु, प्रजापति, अग्नि आदि नाना देवताओं के साथ सम्बन्ध होने से नाना प्रकार के हैं। प्रथम पाद में ही मन्त्रों और देवताओं सहित चारों प्रकार के शस्त्रों के अधिकारी

क्षत्रिय कुमार और उनके पीछे चलने वाले चार प्रकार के लोगः—पदाती, रथी, घुड़सवार और हाथी सवार आदि का प्रतिपादन किया है और शिष्य की दीक्षा, अभिषेक और सेना का सन्नाह तथा अन्यमंगलादि विधान शेष बातें भी धनुर्वेद के प्रथम पाद में प्रतिपादन किया है।

दूसरे पाद में शस्त्र और अस्त्रों के लक्षण, गुरुसम्प्रदाय सिद्ध विशेष २ शस्त्रास्त्रों का बार २ अभ्यास, मन्त्र और देवता आदि की सिद्धि करना प्रतिपादन किया है।

तीसरे पाद में देवता की पूजा और सिद्ध अस्त्रों का प्रयोग बताया गया है।

धनुर्वेद का प्रयोजन दुष्ट दस्युओं का नाश और अपने धर्मों का पालन और प्रजा की रक्षा ये ही हैं।

इन्हीं चार पादों से युक्त प्राचीन धनुर्वेद के उपक्रम को देख कर प्रसिद्ध विद्वान् शार्ङ्गधर ने इसका संग्रह किया है जिसे क्रमशः उद्धृत किया जाता है।

धनुर्धर की प्रशंसाः— 'जिस नगर में एक भी प्रसिद्ध धनुर्धर होता है वहां से शत्रु इस प्रकार दूर भाग जाते हैं जैसे सिंह की गुफा से मृग।" (१)

धनुर्शिक्षा का उपदेशः— धनुर्वेद का जानने वाला आचार्य अच्छी तरह से परीक्षा किये ब्राह्मण को धनुर्शिक्षा का

(१) एकोऽपि यत्रनगरे प्रसिद्धः स्याद्धनुर्धरः।
ततो यान्त्यरयो दूरे मृगाः सिंह गुहादिव॥

उपदेश करे। लोभी, धूर्त, कृतघ्न और मन्द बुद्धि वाले को कभी उपदेश न करे।" (२)

अधिकारः—ब्राह्मण को धनुष का क्षत्रिय को खड्ग का वैश्य को भाले का और शूद्र को गदा का उपदेश देवे। (३)

युद्धों के सात प्रकार—धनुर्युद्ध, कुन्तयुद्ध, छुरीयुद्ध, गदायुद्ध, चक्रयुद्ध, खड्गयुद्ध, और बाहुयुद्ध ये सात युद्ध प्रसिद्ध हैं। (४)

आचार्यादि के लक्षणः—सातों युद्धों को जानने वाला आचार्य कहाता है। चार युद्धों को जानने वाला भार्गव कहाता है। दो युद्धों को जानने वाला योध कहाता है और एक युद्ध को जानने वाला गणक कहाता है। (५)

धनुष-अस्त्र

अस्त्रदानः—आचार्य धनुर्मन्त्र से अभिमन्त्रित कर के अपने शिष्य को मानुष चाप और काण्डमन्त्र से अभि-

---

(२) आचार्येण धनुर्देयं ब्राह्मणे सुपरीक्षिते।
लुब्धे धूर्त्ते कृतघ्ने च मंदबुद्धौ न दापयेत् ॥
(३) ब्राह्मणाय धनुर्देयं खड्गं वै क्षत्रियस्य च।
वैश्यायदापयेत्कुन्तं गदांशूद्राय दापयेत् ॥
(४) धनुश्चक्रञ्चकुन्तञ्च खड्गश्चक्षुरिकागदाः।
सप्तमं बाहु युद्धंस्यात् एवं युद्धानि सप्तधा ॥
(५) आचार्यः सप्तयुद्धः स्यात् चतुर्भिर्भार्गवः स्मृतः।
द्वाभ्याञ्चैव भवेद्योधः एकेन गणको भवेत् ॥

मन्त्रित कर के एक वाण वेद के विधि के अनुसार देवे। (६)

अभ्यास का क्रम:—प्रथम फल रहित वाण से वेधने का अभ्यास करे फिर फल वाले वाण से वेधे। फिर मत्स्य वेध का अभ्यास करावे। फिर मांस के वेधन का अभ्यास करे इस प्रकार वेधन तीन प्रकार का है। इन वेध के अभ्यासों को ठीक प्रकार करने से सर्व लक्ष्य साधक वे-चूक वाण हो जाते हैं। (७)

विजय का शकुन:—मांस वेधन करने पर निकल कर वाण यदि गिरते समय पूर्वादिक झुक कर गिरे तो धनुर्धर विजयी और सुखी होता है। (८)

चाप प्रमाण—"प्रथम चाप यौगिक जो प्रतिदिन के कार्य में आता है और दूसरा युद्ध चाप जो विशेष रूप से युद्ध के ही कार्य आता है" जिस प्रकार खेल में भी गेन्द

---

(६) धिष्ण्यायमानुषं चापं धनुर्मन्त्राभिमन्त्रितम्।
काण्डात्काण्डामि मन्त्रेण दद्याद् वेदविधानतः॥
(७) प्रथमं पुष्पवेधञ्च फलहीनेन पत्रिणा।
ततः फलयुते नैव मत्स्य वेधञ्च कारयेत्॥
मांस वेध ततः कुर्यात् एवं वेधो भवेत्त्रिधा।
एतैर्वेधैः कृतैः पुंसां शराःस्यु सर्व साधकाः॥
(८) वेधनेचैवमांसस्य शरपातो यदाभवेत्।
पूर्व दिग्भागमाश्रित्य तदास्याद्विजयी सुखी॥

और बैटों में एक सेट प्रैक्टिस-अर्थात् अभ्यास के लिये होते हैं और दूसरा मैच करने के योग्य होता है। (९)

वह धनुष उत्तम है जो अपने बाहुबल के सामर्थ्य से कुछ न्यून बल का हो धनुर्धारी का अधिक बलशाली होना अच्छा है उस धनुष के अपेक्षा जो धनुर्धारी के सारे बल से भी न खिंचे। इस लिये अपने बल के सानुपात में ही चाप होना चाहिये क्योंकि बल योग्य धनुष से बाधित होता हुआ धनुर्धारी लक्ष्य को नहीं देखता। (१०)

दिव्य चाप—सब से बड़ा और उत्तम चाप देवताओं का चाप होता है उससे कम मनुष्यों का। श्रेष्ठ चाप साढ़े पांच हाथ का होता है यही दिव्य धनुष कहाता है। ऐसा ही धनुष शंकर ने पूर्व काल में धारण किया था। कृत युग में महादेव ने त्रेता में राम ने और द्वापर में ब्राह्मण द्रोणाचार्य ने ऐसे दिव्य-चाप को धारण किया था। (११)

---

(९) प्रथमं यौगिकं चापं युद्ध चापं द्वितीयकम्।
निजबाहु बलोन्मानाम् किञ्चन्यूनं शुभं धनुः ॥

(१०) वरंप्राणाधिकोधन्वी नतु प्राणाधिकं धनुः।
धनुषा पीड्यमानस्तु धन्वी लक्ष्यं न पश्यति ॥

(११) अतोपि अबलोन्मानं चापस्याच्छुभकारकम्।
देवानामुत्तमं चापं ततोन्यूनं च मानवम् ॥
अर्धंच षुब्धहस्तंतु श्रेष्ठं चापं प्रकीर्त्तितम्।
तद्विज्ञेयं धनुर्दिव्यं शंकरेणधृतं पुरा ॥

मानुषचाप—"चौविस (२४) अंगुल का एक हाथ होता है, चार हाथ का एक धनुष कहाता है। यही मानव चाप का परिमाण है। यह चाप सब लक्षणों से युक्त तीन या पांच पोरुओं वाला या सात या नव पोरुओं वाला विधान किया है। (१२)

चार, छै, आठ पोरुओं वाला धनुष सदा त्याग देना चाहिये। कइयों का धनुष ९ बीता लम्बा होता है। (१३)

त्याज्य धनुष:— अति जीर्ण कच्चा या वेपकाव अपने सम्बन्धियों से धारण किया गया, जला हुआ अन्दरया वाहर को मुड़ा हुआ त्याज्य हैं।

धनुष के अन्दर या बाहर छेद न करना चाहिये। धनुष के अग्र भाग में गांठ न होनी चाहिये। हथेली से पकड़ने के स्थान पर भी गंठ न होनी चाहिये। विना पका धनुष टूट जाता है बहुत पुराना कड़क जाता है और चर्र चर्र करता है। दायादों से धारण किया चाप रखने से चित्त में घबराहट और वान्धवों से

कृतेयुगे महादेवस्त्रेतायां चापिराघवः।
द्वापरे द्रोण विप्रश्च दिव्यं चापमधारयत् ॥
(१२) चतुर्विंशांगुलोहस्तः चतुर्हस्तधनुः स्मृतम्।
तद्भवेन्मानवं चापं सर्वलक्षण संयुतम् ॥
त्रिपर्वं पञ्चपर्वं वा सप्तपर्वं प्रकीर्त्तितम्।
नवपर्वं चकोदण्ड चतुर्धाशुभकारकम् ॥
(१३) चतुष्पर्वं च षट् पर्वं मष्ट पर्वं च वर्जयेत्।
केषाञ्चि च्चभवे च्चापं वितस्ति नवसम्मितम् ॥

कलह होता है। जले हुए से घर जल जाता है। छिद्र हुए धनुष से युद्ध में पराजय होता है। बाहर की ओर झुका रहने से लक्ष्य नहीं सधता उसी प्रकार अन्दर को मुड़ने वाले से भी निशाना नहीं सधता हीन चाप में बाण लगाने से संग्राम मे हार हो जाती है। आक्रमण हो जाने पर निशाना नहीं बैठता गले और तले की गांठ से धन नष्ट हो जाता है। इन सब दोषों से रहित धनुष सब कामो में श्रेष्ठ हैं। (१४)

दिव्यशार्ङ्ग धनुषः—विष्णु का परम हथियार दिव्य-धनुष शृङ्ग का बना हुआ होता है। विश्वकर्मा ने वह धनुष सात वितस्ति लम्बा बनाया था। स्वर्ग, पाताल और भूमि पर भी किसी के हाथ में वैसा धनुष बिना पुरुषोत्तम के वश में

---

(१४) अतिजीर्णमपक्वञ्च ज्ञातिधृष्टं तथैव च।
दग्धं च्छिद्रं न कर्त्तव्य वाह्याभ्यन्तर हस्तकम्॥
गलग्रन्थिन कर्त्तव्यं तलंमध्ये तथैव च।
अपक्वं मंगमायाति अतिजीर्णं सुकर्कशम्॥
ज्ञातिधृष्टं सुसोद्वेगं कलहोबांधवैःसह।
दग्धेनदह्यते वेश्म छिद्रं युद्ध विनाशनम्॥
बाह्येलक्ष्यं न लभ्येत् तथैवाभ्यन्तरेऽपिच।
हीनेहुसं धितेबाणे संग्रामे भंगकारकम्॥
आक्रान्तेतुपुनः क्वापि लक्ष्यं न प्राप्यते दृढम्।
गलग्रन्थितलग्रन्थिध्यन हानि करेधनुः॥
एभिर्दोषैर्विनिर्मुक्तं सर्व कार्यं करंस्मृतम्।

नहीं आता । वह धनुष पुरुष प्रमाण का श्रृंग का बना और बहुत वर्षों में बनाया गया था और ६ $\frac{1}{2}$ वितस्ति का सर्व कार्यों के साधने के निमित्त बनाया गया था । ऐसा सीता का बना धनुष गज और अश्व पर चढ़ने वाले सवारों को रखना चाहिये । रथारोही और पैदल योद्धाओं को बांस का चाप विधान किया है । (१५)

धनुष का ज्याः—जैसी ज्या बनानी चाहिये उस प्रकार की ज्या का लक्षण सुनिये । कपास के सूत की कनिष्ठा (छोटी उंगली) जितनी मोटी, धनुष जितनी लम्बी विना जोड़ की, साफ़ तीन तन्तुओं की बटी हुई होनी चाहिये । खुब बटी हुई बहुत कार्य करती है और सब कुछ सहती है । यदि सूत न हो तो हरिण की तांत होए । ज्याके लिये तो भैंस की तांत या उसी समय के मारे गोकर्ण नाम पशु के चर्म की तांत या बकरे की तांत, होनी चाहिये । ज्या बनाने के लियें विना रूप के तागे लेनी चाहिये ।

---

(१५); शार्ङ्गं पुनर्दिव्य धनुर्वर्षिष्ठ्योः परममायुधम् ।
वितस्ति सप्तमं मानं निर्मितं विश्वकर्मणा ॥
नस्वर्गे नचपाताले नभूर्लोकस्य चिस्करे ।
तद् धनुर्यमायाति मुञ्चैक पुरुषोत्तमम् ॥
पौरुषेयं ततश्शार्ङ्गं बहु वत्सर शोभितम् ।
वितस्तिभिः सार्द्धं षड्भिः निर्मितं चार्य साधनम् ॥
प्रायो योज्यं धनुः शार्ङ्गं गजारोहाश्ववादिनाम् ।
रथिनाश्च पदातीनां वायं चापं प्रकीर्त्तितम् ॥

पके बांस के छिलके की भी बनायी गयी ज्या दृढ़ होती है। यदि उस पर कपास का सूत लिपटा हो तो बहुत ही दृढ़ और सब चोटें सहने वाली होती है। भाद्र पद मास में आक वृक्ष की छाल की ज्या भी बहुत अच्छी होती है। बटे हुए आक के १८ हाथ तन्तु लेवे और उसको तिहरा कर लेवे अर्थात् छ हाथ की ज्या होनी चाहिये (१९)

धनुष का बाण—इस से आगे धनुष के बाण के विषय में कहेंगे। बाण बहुत स्थूल न हो और बहुत सूक्ष्म भी न हो न कच्चा हो और न खराब जमीन का पैदा हुआ हो। जिसकी गांठे

---

(१९) गुणानां लक्षणं वक्ष्ये या दृशं कारयेद् गुणम।
पट्ट सूत्रोः गुणः कार्यः कनिष्ठा मानसम्मितः॥
धनुः प्रमाणो निः सन्धिः शुद्धैस्त्रिगुणतन्तुभिः।
वर्त्तितः स्याद्गुणः शुरायः सर्वकर्मसहो युधिः॥
अभावे पट्टसूत्रस्य हरिणी स्नायुरिष्यते।
गुणार्थमपि च ग्राह्या स्नायवो महिषीभवाः॥
तत्काल मृत्गोकर्णं चर्मणाश्छागलेनवा।
निर्लोमतन्तु सूत्रेण कुर्याद् वा गुण मुत्तमम्॥
पक्ववंश त्वचः कार्यो गुणस्तु स्थावरो दृढः।
पट्टसूत्रेण सन्नद्ध सर्व कर्म सहो युधि॥
प्राप्तेभाद्रपदेमासि त्वगर्कस्य प्रशस्यते
तस्या तत्रगुणः कार्यो नचिर स्थावरोदृढः।
वृतार्क सूत्रतन्तुनां हस्तास्त्वाष्टा दशस्मृताः
तद् वृतः त्रिगुणं कार्यं प्रमाणो यं गुणे स्मृतः)

खराब और जो फटा हो ऐसे बाण को छोड़ दे। पूर्ण गांठ वाले अच्छी प्रकार से पका हुआ श्वेत और समय पर काटा हुआ अच्छे देश का पैदा हुआ सरकण्डे का बाण होवे। बाण एक मूठ कम दो हाथ लम्बा होवे।

इन बाणों के साथ—कौए, हंस बाज़, बगुला, कुंज, मोर, गीध और कुरर इन पक्षियों के पंख जोड़ना उत्तम है। एक एक बाण के साथ चार चार पंख लगावें और छ अंगुल प्रमाण के पत्र काट २ कर लगावे। सींग के धनुष के बाण में १० दश अंगुल का पंख लगता है। इन पंखों को दृढ़ सूक्ष्म तांतों से कस दे।

शर तीन प्रकार का होता है स्त्री (मादी) पुमान् (नर) नपुंसक (हीजड़ा) आगे से मोटा बाण स्त्री या नारी कहाता है, पीछे से मोटा पुमान् या नर कहाता है। सम बाण नपुसक होता है।

लक्ष्य भेदने के लिये नपुंसक श्रेष्ठ है दूर फेकने के लिये नारी और दृढ़ भेदन के लिये पुमान् बाण योग्य होता है (१७)

---

(१७) अतः परं प्रवक्ष्यामि शराणां शुभ लक्षणम्।
न चातिजूर्णं न च पक्वं न कुब्रमिजम्।
हीनग्रन्थिं विदीर्णञ्च वर्जयेदीदृशं शरम्।
पूर्णग्रन्थिं सुपक्वञ्च पाण्डुरं सयादृतम्।
कठिनं वर्त्तुलं काण्डम् ग्रहणीयात्सुप्रदेशजम्।
द्वौ चहस्तौ मुष्टिहीनौ दैर्ध्यं स्थौल्ये कनिष्ठिका।
विधेया शरमानेषु यन्त्रेष्वाकर्षयेततः।
काकहंस यथा दानां मत्स्यादक्रौच केकिनाम्।

बाण के फले:—शुद्ध लोह का तीखी धार वाला खन्दाले से रहित होने चाहिये। बाण में वज्र लेप चूने की गन्ध या सरेस लगावे। बाण के फले आरामुख, क्षुरप्र गोपुच्छ, अर्धचन्द्र, सूचीमुख भल्ल, वत्सदन्त, डिभल्ल, कर्णिक, काकतुण्ड, आदि अनेक देशों में बहुत से प्रकार के होते हैं।

आरामुख से चमड़ा, क्षुरप्र से धनुष, सूचीमुख से कवच, अर्ध चन्द्र से मस्तक, भल्ल से हृदय, द्विभल्ल से गुण और शर भेदा जाता था काकतुण्ड से लोहे का कवच, गोपुच्छ से लक्ष्य वेधा जाता है। एक और प्रकार का भी गोपुच्छक होता है जो सारा काठ का बना होता है और मुख पर थोड़ा सा लोहा लगा होता है ३ अंगुल लम्बा होता है। १७॥

गृध्राणां कुररुणाञ्च पक्षाश्तेषु शोभनाः।
एकैकस्य शरस्यैव चतुष्पक्षान्नियोजयेत्।
षडांगुलप्रमाणेन पक्षच्छेदं च कारयेत्।
दशाङ्गुलिमितं पक्षं शार्ङ्गं चापस्य मार्गणे।
योज्यास्त्वाश्चतुः संख्याः सन्नद्धाः स्नायुतन्तुभिः
शराश्चत्रिविधाः ज्ञेया स्त्रीपुमाश्च नपुन्सकाः।
अग्रेस्थूलां भवेन्नारी पश्चात्स्थूलो भवेत् पुमान्।
समं नपुंसको ज्ञेयं तल्लक्ष्यार्थं नियोजयेत्
दूरमान युवत्या च पुरुषो भेद येद्दृढम्
(१७) फलन्तु शुद्ध लोहस्य सुधारां तीक्ष्ण पक्षतम्।
योजयेत् वज्रलेपेन शरे पक्षानुमानतः॥

फलों को रस में बुझाना:—फलों को किन्हीं विशेष रस में बुझाने को फल यापन कहा जाता है। दिव्यौषधियों के प्रलेप से वाण ऐसा दृढ हो जाता है जिससे दुर्भेद्य कवच भी वृक्ष के पत्ते की नाईं विध जाते हैं। पिपली सेंधा नमक कूट, इनको गाय के मूत्र में खूब पीस ले इससे शस्त्र को लेप करके आग में तपावे जब तप कर लाल हो जावे और औषध आग में नीली नीली दीखे तब उसी पानी में बुझा लेवे। (१८)

आरामुखं क्षुरप्रञ्च गोपुच्छं चार्द्धचन्द्रकम्।
सूचिमुखं च भल्लं च वत्सदन्तं द्विभल्लकम्॥
कार्णिकं काकतुण्डञ्च तथाऽन्यान्यपि अनेकशः।
फलानि देश देशेषु भवन्ति बहुरूपतः॥

सूचीमुखेन कवच छाद्धं चन्द्रेण मस्तकम्।
आरामुखेन वै चर्म क्षुरप्रेण च कार्मुकम्।
भल्लेन हृदयं भेद्यं द्विभल्ले न गुणाः शराः।
लोहञ्च काकतुण्डेन लक्ष्य गो पुच्छकेन च॥
अन्यद् गोपुच्छकञ्चैव शुद्ध काष्ठ विनिर्मितम्।
मुखेषु लोह कण्टेन विद्धं मांगुल सम्मितम्।

(१८) फलस्य यापनं वक्ष्ये दिव्यौषधि विलेपनैः।
येन दुर्भेद्य वर्माणि भेदयेत्तरुपल्लवम्।
पिप्पली सैंधवकुटं गोमूत्रे च सुपेषयेत्।
अनेनलेपयेच्छस्त्रं लिप्तं चाग्नौ प्रतापयेत्।
शिखिग्रीवाभ वर्णाभं तप्त पीतं तथौषधं।
ततस्तु विमलं तोयः पायपेत् यंत्रमुत्तमम्॥

नाराच और नालीक—संस्कृत साहित्य में नाराच को बाण के साधारण पर्यायों में से एक समझा जाता है। यह भूल है परन्तु धनुर्वेद की परिभाषा में सर्व लोह का बना बाण नाराच कहा जाता है। उसमें पांच बड़े बड़े पंख लगाये जाते हैं यह नाराच किसी विरले के ही हाथ में सधता है।

नालीक छोटे बाण होते हैं जो नलयन्त्र (बन्दूक) से फेंका जाता है। बहुत ऊंचे और बहुत दूर फेंकने में और दुर्गयुद्धों में ये बहुत काम आते हैं। (१६)

स्थान—(Position) धनुष से भिन्न २ काम करने के लिये भिन्न २ प्रकार की स्थितयें या पैंतरें रखने पड़ते हैं वेही स्थान (Position) कहाती हैं। इसी प्रकार ५ प्रकार की मुष्ठियें होती हैं और पांच प्रकार के व्याय होते हैं। धनुष को पकड़ने के लिये हाथ की पकड़ मुष्टि कहाती है। और धनुष को पकड़ कर खींचना व्याय कहाता है। (२०)

(१) **आलीढ़**—आगे बायां पैर और पीछे दायां पैर

---

(१९) सर्व लोहास्तु ये बाणाः नाराचास्त प्रकीर्त्तिताः
पञ्चभिः पृथुकैः पक्षैः युक्ताः सिध्यन्ति कस्यचित्॥
नालिका लघवो बाणाः नलयन्त्रेण नोदिताः।
अत्युच्च दूर पातेषु दुर्गयुद्धेषु मे मताः॥
(२०) स्थानानि त्वष्टौ विधेयानि योजने भिन्न कर्मणाम्।
(१) अग्रतो वाम पादश्च दक्षिण ञ्चानुकुञ्चितम्।
आलीढं तुप्रकर्त्तव्यं हस्तद्वय सविस्तरम्।

संकोचित करके दोनों पैरों में दो हाथ का विस्तार रखे तो आलीढ़ कहाता है।

(२) प्रत्यालीढ़ः—प्रत्यालीढ़ में दायां पैर आगे और पीछे बायां पैर संकोचित करके रखे। बाण को दूर फेंकने के लिये दायां पैर आगे रखा जाता है।

(३) विशाखः—दोनों पैर एक हाथ फैलाये और एक दूसरे के आगे पीछे न होकर समान रेखा में हो तो यह स्थिति विशाख कहाती है। यह स्थिति कूट वेधन के काम में आती है।

(४) समपाद—दोनों पैरों को मिलाकर स्थिर कर रखना समपाद स्थिति कहाती है।

(५) असमः—असम पादस्थिति में बायां पैर आगे और शरीर हाथ पर झुका रहता है।

(६) दर्दुरक्रम—दर्दुरक्रम में दोनों पैरों को मोड़ कर धरती पर टेक लिया जाता है। यह बैठक दृढ़ भेदन के कार्य में आती है।

---

(२) प्रत्यालीढं तु कर्त्तव्यं सव्यं जानु वा कुञ्चितम् ।
दक्षिणं तु पुरस्ताद्धि दूरपाते विशिष्यते ॥

(३) पादौ सविस्तरौ कार्यौ समौ हस्तप्रमाणतः ।
विशाखस्थानकं ज्ञेयं कूटलक्ष्यस्य वेधने

(४) समपादे: समौ पादौ निष्कम्पौ च सुसंगतौ ॥

(५) असमे चतुरो वामे हस्त मात्रेण तं वपुः ।
आकुञ्चितौ द्वावत्र जानुभ्यां धरणी गतौ ।

(६ दर्दुर क्रम मित्याहुः स्थानकं दृढ़ भेदने ॥

(७) गरुड़ क्रम—बांया गोड़ भूमि पर टेक कर दायां सकोड़ कर आगे रखा जावे तो यह बैठक गरुड़क्रम कहाती है।

(८) पद्मासन—प्रसिद्ध ही पद्मासन बैठ कर धनुर्धारी बाण मारे यह आसन सब से अच्छा समझा जाता है।

गुण मुष्टियें

ज्या को पकड़ने के भी कितने ही भिन्न २ तरीके हैं। पताका, वज्रमुष्टि, सिंह कर्ण, मत्सरी, कातुण्डी इत्यादि नाना प्रकार की पकड़ने की विधि हैं। (२२).

(१) पताकाः—तर्जनी अंगुली जिसमें अंगूठे के मूल में मुड़े और (अंगूठा) घोड़े के ऊपर हो वह पकड़ पता का कहाती है। नालिकास्त्र से दूर गोली फेंकने के यह कार्य में आती है।

(२) वज्रमुष्टिः—जिसमें तर्जनी और मध्यमा दोनों

---

(७) सव्यं जानु गतौ भूमौ दक्षिणं च सु कुञ्चितम् ।
अग्रतो यत्रदातव्यतंविधा गरुड़क्रमम् ।

(८) पद्मासनं प्रसिद्धं ह्युपविश्य यथा क्रमम्
धन्विनास्तु विज्ञेयं स्थानकं शुभ लक्षणम् ॥

(२२) पताका वज्रमुष्टिश्च सिंह कर्णं तथैव च ।
मत्सरी काकतुण्डी च योजनीया यथा क्रमम् ।

(१) दीर्घात् तर्जनी यत्र ह्याश्रितां गुष्ठमूलकम् ।
पताका साचविज्ञेया नलिका दूरमोक्षणे ॥

(२) तर्जनी मध्यमामध्यमंगुष्ठो विशते यदि ।

अंगुलियों के बीच में यदि अंगुठा लगा कर तांत खींची जाय तो यह पकड़ वज्रमुष्टि कहाती है । स्थूल नाराच छोड़ने में उपयोगी है।

(३) सिंहकर्णः—जिसमें तर्जनी के अगले हिस्से और अंगूठे के मध्य भाग से तांत को पकड़ कर खींचा जाय वह सिंह कर्ण कहाती है। यह लक्ष्य को दृढ़ वेधन के कार्य में आती है।

(४) मत्सरीः—अंगूठे और तर्जनी इन दोनों के प्रदेश से तांतको खींचा जाता है। वह पकड़ मत्सरी कहाती है यह चित्र लक्ष्य के वेधन के कार्य में आती है।

(५) काकतुण्डीः—अंगुष्ठ के अगले भाग और तर्जनी के अगले भाग में जब तांत खैंची जाय तो काकतुण्डी कहाती है यह सूक्ष्म लक्ष्य में काम आती है।

धनुर्मुष्टि सन्धान

उपरोक्त मुष्टियें तो तांत की थी। धनुर्दण्ड की पकड़ को धनुर्मुष्टि कहते हैं। इसके प्रयोग को संधान कहते हैं यह

वज्रमुष्टिः सुविज्ञेयां स्थूले नाराच मोक्षणे।

(३) अंगुष्ठ मध्यदेशंतु तर्जन्यग्रं सुसंस्थितं।
सिंह कर्णः सविज्ञेय दृढ़ लक्ष्यस्य वेधने॥

(४) अंगुष्ठ नख मूलेतु तर्जन्यग्रं च संस्थितम्।
मत्सरी साच विज्ञेया चित्र लक्ष्यस्य वेधने।

(५) अंगुष्ठाग्रेतु तर्जन्या मुखंयत्रनिवेशितम्
काकतुण्डी च साज्ञेया सूक्ष्म लक्ष्येषु योजिता।

संधान तीन प्रकार का होता है अधःसंधान, ऊर्ध्वसंधान और समसंधान।

दूर वाण फेंकने के लिये नीचे से पकड़ा जाता है और वाण धनुर्मुष्टि के ऊपर होता है। स्थिर लक्ष्य पर मारने के लिये सममुष्टि होनी चाहिये अर्थात् दोनों मुष्टि और वाण एक स्थान पर होना चाहिये। दृढ़ भेदन के लिये ऊर्ध्वं मुष्टि होनी चाहिये। (२३)

ज्याय

धनुष के खींचने को ज्याय कहते हैं। ज्याय पांच प्रकार के होते हैं, कैशिक, सात्विक स्कन्धनामा, भरत और वत्सकर्ण (२४)

(१) कैशिकः—तांत को खींच कर केशों के मूलों तक खींचना कैशिक कहाता है। यह चित्र युद्धों के काम में आता है।

---

(२३) संधानां त्रिविधं प्रोक्तं मध्य ऊर्ध्वं समं सदा।
यो जये त्रिप्रकारंहि कार्ये स्वपियशा क्रमम्।
अधश्चदूरपातित्वे समेलक्ष्ये सुनिश्चले।
दृढ स्फोटं प्रकुर्वीत ऊर्ध्वं संधानयोगतः॥
(२४) कैशिकः केशमूलेयः स्थिरः शृङ्गे च सात्विक।
अथयो वत्सकर्णश्च ग्रीवायां भरतो भवेत्॥
अंसयोस्कन्धनामा च ज्यायाः पञ्चप्रकीर्त्तिताः।
कैशिकश्चित्रभुद्धेषु ह्यद्धोलक्ष्येषुसात्विकः॥
वत्सकर्णो सदाज्ञेयः भरतो दृढभेदने।
दृढ भेदे च दूरे च स्कन्धनामान मुद्दिशेत्॥

(२) सिर की चोटी तक खींचना सात्विक कहाता है। यह ऊर्ध्व लक्ष्य भेदन के कार्य में आता है।

(३) वत्सकर्ण:—कान तक खींचना वत्सकर्ण कहाता है। यह दृढ़ भेदन में काम आता है।

(४) भरत:—गर्दन तक खींचना भरत कहाता है। यह भी दृढ़ भेदन ही के लिये है।

(५) कन्धे तक खींचना स्कन्धनामा कहाता है इससे वाण दूर और दृढ़ भेद करता है।

लक्ष्य

निशाना लक्ष्य कहाता है लक्ष्य ४ प्रकार का होता है स्थिर, चल, चलाचल और द्वयचल। (२५)

(१) स्थिरः—अपनेको स्थिर करके बुद्धिमान् धनुर्धारी स्थिर ही लक्ष्य को ही तीन प्रकार से वेध करे वह धनुर्धारी स्थिर वेधी कहाता है।

(२) चल—अपने स्थान पर दृढ़ता से खड़ा हुआ धनुर्धारी यदि चल लक्ष्य को वेध करता है: आचार्यलोग उसको चल लक्ष्य वेधी कहते हैं।

---

(२५) लक्ष्यं चतुर्विधं ज्ञेयं स्थिरंचैव चलं तथा।
चलाचलं द्वय चल वेधनीयं क्रमेणतु॥
(१) आत्मनं सुस्थिरं कृत्वा लक्ष्यं च वास्थिरं बुधः।
वेधयेत् त्रिप्रकारं तु स्थिरं वेधीस उच्यते॥
(२) चलंतु वेधये यस्तु आत्मस्थानेसुसंयतः
चलं लक्ष्यं ततत्प्रोक्तं माचार्येण सुधीमता॥

(३) चलाचल—धन्वी स्वयं तो चले और स्थिर लक्ष्य का भेद करे तो यह लक्ष्य वेध चलाचल कहाता है।

(४) द्वयचल—जिसमें धन्वी स्वयं भी चल रही हो और लक्ष्य भी चल हो तो यह वेध क्रिया द्वयचल कहाता है।

कुछ एक नियम (२६)

श्रम से ही लक्ष्य का न चूकना दूर पर निशाना लगाना और दृढ़ भेदन करना तथा श्रम से ही विना किसी स्खलन के ज्याका खींचना इससे शीघ्र ही बाण संधाना करने का अभ्यास हो जाता है।

चित्र योध का अभ्यास भी बहुत श्रम से होता हैं और जय भी बहुत कष्ट से प्राप्त होता है। इस लिये ज्ञान वाले धनुर्धारी को भी गुरु के सामने ही इसका अभ्यास करना चाहिये।

---

(३) धन्वी तु चलते यत्र स्थिर लक्ष्ये समाहितः।
चलाचलं भवेत्तच्चलक्ष्य प्रमेयमचिन्तितम्॥
(४) उभावेव चलौ यत्रः लक्ष्यं चापि धनुर्धरः।
तद्विज्ञेयं द्वय चलं श्रमेण खलुसाध्यते॥
(२६) श्रमेण स्स्खलितं लक्ष्यं दूरं वा वहुभेदनम्।
श्रमेणास्खलिता कृष्टिः शीघ्र संधान माप्यते।
श्रमेण चित्र योधित्वं श्रमेणप्राप्यते जयः।
तस्माद् गुरुसमक्षं हि श्रमः कार्यो विजानता॥
प्रथमं वाम हस्तेन यः श्रमं कुरुतेनरः।
तस्य चाप क्रिया सिद्धि रचिरा देवजायते॥
वाम हस्ते सुसंसिद्धे पश्चाद्दक्षिणमारभेत्।
उभाभ्यां च श्रमः कुर्यात् नाराचैश्च शरैस्तथा॥
वामे नैव श्रमं कुर्यात् सुसिद्धे दक्षिणंकरे।
विशाखेना समेनैव रथी व्यायै चक्रीधिके॥

जो व्यक्ति बायें हाथ से परिश्रम तथा अभ्यास करता है उसका धनुष का हाथ शीघ्र ही सिद्ध हो जाता है। पहले बायें हाथ को सधाना चाहिये फिर दक्षिण का अभ्यास करें। और फिर दोनों का ही अभ्यास करे। नाराच और शर दोनों का ही अभ्यास करना योग्य है।

दक्षिण हाथ के सिद्ध हो जाने पर बायें हाथ सेही परिश्रम करना चाहिये। विशाख और असम इन दोनों पैतरों पर खड़े होकर कैशिक न्याय से रथी श्रम करे। सूर्य के उदय काल (२७) में लक्ष्य पश्चिम में नियत करे और अपरान्ह काल में लक्ष्य पूर्व दिशा में होना चाहिये। सदा लक्ष्य उत्तर में होना चाहिये परन्तु दक्षिण में कभी भी लक्ष्य का न रखना चाहिये। साठ धनुष अर्थात् २४० हाथ (३६०) फुट, पर रखा लक्ष्य ज्येष्ठ

---

(२७) उदिते भास्करे लक्ष्यं पश्चिमायां निवेशयेत्।
अपराह्णे च कर्त्तव्यं लक्ष्य पूर्वदिगाश्रितम्।
उत्तरेण सदा कार्यं न लक्ष्यं दक्षिणा मुखम्।
षष्टिधन्वन्तरे लक्ष्यं ज्येष्ठं लक्ष्यं प्रकीर्त्तितम्॥
चत्वारिंशन्मध्यमञ्च विंशतिश्च कनिष्ठकम्।
शराणां कथितं ह्येत् नाराचानामयो च्यते॥
चत्वारिंशं त्रिंशच्चषोडशैश्च भवेत्ततः।
चतुः शतैश्चकाण्डानां यो लक्ष्यं विसर्जयेत्॥
सूर्योदये चास्तमये सज्येष्ठा धन्विनां भवेत्।
त्रिशतैर्मध्यमश्चैव द्विशताभ्यां कनिष्ठकः॥
लक्ष्यञ्च पुरुषोन्मानं कुर्याश्चन्द्रक संयुतम्॥
ऊर्ध्वभेदीभवे ज्ज्येष्ठोनाभि वेधी च मध्यमः।
पाद वे धीतु लक्ष्यस्य सकनिष्ठोमतो बुधैः॥

कहाता है। ४० धनुष (१६० हाथ) पर मध्यम लक्ष्य कहाता है और २० धनुष (८० हाथ) पर लक्ष्य निकृष्ट कहाता है नाराच के फेंकने के लिए ४० धनुष उत्तम ३० धनुष मध्यम और १६ धनुष (६४ हाथ) पर रखा लक्ष्य कनिष्ठ कहाता है। सूर्योदय और अस्तमन समय दोनों कालों में जो धनुर्धर ४०० निशाने पर ठीक वेध करनेवाले वाण फेंक सकता है वह धनुर्धारियों में सब से श्रेष्ठ है। ३०० निशाने लगानेवाला मध्यम और २०० लगाने वाला कनिष्ठ कहाता है। लक्ष्य पुरुष जितना बड़ा एक चक्र करके उसमें चक्र बना कर आगे रखना चाहिये। ऊपर के आधे में मारने वाला ज्येष्ठ कहाता है नाभि में मारने वाला मध्यम और पाद में मारने वाला कनिष्ठ कहाता है।

धनुष का अभ्यास

अब धनुषादि अस्त्रों की क्रियाएं कही जाती हैं जिनके ज्ञान मात्र से अवश्य सिद्ध होती है अन्यथा नहीं। प्रथम चाप पर चिल्ला चढ़ा कर बांध ले। फिर किसी पैंतरे पर बैठ कर अपने वाण पर हाथ फेरले। धनुष को वायें हाथ से न उठावे। प्रत्युत दायें हाथ से उठाकर फिर बायें हाथ में लेकर वाण संधा न करके पहले ही वाण खींच कर भूमि पर न मारे परन्तु शिव को नमस्कार करे फिर गणेश को फिर गुरु को और धनुष और शर को प्रणाम करे। फिर वाण खींचने की आज्ञा गुरू से लेनी चाहिये और फिर प्राणवायु को प्रयत्न से प्राण के साथ पूर्ण करे और कुम्भक प्राणा-याम के अनुसार प्राण को स्थिर करके हुँकार के साथ सद्य प्राण का त्याग करे। यही क्रिया धनुर्धारियों को शीघ्र

सिद्धि देती है। छः मास में मुष्टि सधती है और वर्ष भर में बाण और नराच तो उसको सिद्ध होते हैं जिस पर महेश्वर की कृपा है। पुष्प की तरह बाण उठावे और सर्प की तरह धनुष को खींचे और धन के सदृश लक्ष्य की चिन्ता करे तो अपनी सिद्ध होगी। (२८)

आचार्य्य लोग केवल क्रिया मात्र का अभ्यास चाहते हैं और भार्गव लोग दूर फेंकने को अभिलाषा करते हैं। राजा लोग दृढ़ भेदन की इच्छा करते हैं और साधारण लोग केवल लक्ष्य वेध मात्र चाहा करते हैं। लक्ष्य वेधन से सर्वसाधारण

---

(२८) क्रियाकला पाश्च वक्ष्यामि श्रमसाध्याशुमुच्छिन्नाम् ।
येषांविज्ञान मात्रेण सिद्धिर्भवति नान्यथा ।।
प्रथमं चापमारोप्य चूलिकां वंधयेत्ततः ।
स्थानकं तु ततः कृत्वा वाणो परकरं न्यसेत् ।।
तुलनं धनुषश्चैव कर्त्तव्यं वामपाणिना ।
आदानं चततः कृत्वा संधानञ्चततः परम् ।।
सकृदाकृष्टं चापेन भूमि वेधं न कारयेत् ।
नमस्कुर्याच्छिवं विघ्नराजं गुरुं धनुः शरान् ।।
याचित्वा गुरोराज्ञा बाणास्याकर्षणं प्रति ।
प्राण वायु प्रयत्नेन प्राणेना सहपूरयेत् ।।
कुम्भकेन स्थिरं कृत्वा हुंकारेण विसर्जयेत् ।
इत्याभ्यास क्रिया कार्यं धन्विनां सिद्धिमिच्छता ।।
षण्मासा त्सिद्ध्यते मुष्टि शरा संवत्सरेणतु ।
नाराचास्तस्य सिद्ध्यन्ति यस्यतुष्टो महेश्वरः ।।
पुष्प वद्धारये द्वाणं सर्पवुत्पीड़येद्धनुः ।
धनवच्चिन्तये लक्ष्यं यदीच्छेत्सिद्धिमात्मनः ।।

का भी शीघ्र ही मनोरञ्जन हो जाता है इसलिए लक्ष्य का वेधन ही अत्युत्तम है।

निशाने का न चूकना

विशाख नामक पैतरे से खड़ा होकर गोपुच्छ मुखबाण लेकर सिंहकर्ण मुष्टि से कैशिक व्याय करे और बाण के अगले भाग आदि न हिलावे न डुलावे अगला और पिछला दोनों कन्धे सम करे और हाथ निश्चल करे आंखों को न हिला कर दृष्टि को लक्ष्य पर बांधे मुठी और बाण के अग्रभाग से लक्ष्य को छिपा कर मन में लक्ष्य को देखता हुआ बाण छोड़ दे इस प्रकार से योद्धा अभ्यास करके कभी भी लक्ष्य नहीं चूकता। (२६)

क्रिया मिच्छन्ति माचार्याः दूरमिच्छन्ति भार्गवाः।
राजानोदृढमिच्छन्ति लक्ष्यमिच्छन्तिचेतरे ॥

जनानां रंजनं येन लक्ष्यपातात्प्रजायते।
हीनेना पीपुणा तस्मात् प्रशस्त लक्ष्य वेधनम् ॥

—(२९) विशाखस्थानकं हित्वासमसंधानमाचरेत्।
गोमुच्छमुख बाणेन सिंहकर्णनमुष्टिना ॥
आकर्षेत् कैशिकव्याये नशिखाश्चालयेत् ततः।
पूर्वा परौ समौ कार्यौ समासौ निश्चलौ करौ ॥
चक्षुषीस्वं दवेनैन दृष्टि लक्ष्ये नियोजयेत्।
मनो दृष्टि गतंज्ञात्वा ततः कायद विसर्जयेत् ॥
स्खलत्येवकदा चिन्न लक्ष्ये यो योर्जितः श्रमः ॥

शीघ्र संधानः—वाणों के रखने के लिए धनुर्धर अपनी पीठ पर एक तर्कस या तूणीर लगाते हैं उस तूणीर से वाण को लेकर चाप में लगाना तांत खीचना तथा वाण का फेंकना, इस क्रिया को जो वहुत शीघ्र करता है उसके नित्य ही के अभ्यास करने से शीघ्र संधानतर हो जाती है। (३०)

दूर पातिताः— पताका नाम की मुष्टि से स्त्री या मादी वाण को दूर फेंक जाता है। (३१)

दृढ़भेदिताः—प्रत्यालीढ़ आसन पर खड़ा हो कर नीचे की तरफ वाण फेंके और दर्दुरासन बैठ कर वाण ऊपर की तरफ फेंके और स्कंधव्याय वज्र मुष्टि और नरवाण से अभ्यास करने पर भुजाओं को बहुत दृढ़ भेदन का अभ्यास हो जाता है।

हीन गतियेंः— इसके अतिरिक्त वाण की गतियें भी कुछ प्रशस्त और कुछ अप्रशस्त कहाती हैं। उनमें भी सूची-मुखा, मीन पुच्छा, भ्रमरी ये तीन गतियें वाणों की अप्रशस्त कही जाती है। (३२)

---

(३०) आदानं चैव तूणीरात् संधानं कर्षणं तथा ।
क्षेपणं चाचरायुक्तः वाणस्यकुरुतेद्रुयः ॥
नित्याभ्यास वशात्तस्य शीघ्र संधानता भवेत् ।
(३१) मुष्ट्या पताकया वाणं स्त्री चिन्हं दूर पातनम् ॥
(३२) सूची मुखा मनीपुच्छा भ्रमरीच तृतीयका ।
शरोणां गतयस्तिस्रोप्रशस्ताः कथिताः बुधैः ॥

(१) सूचीमुखा गति उस वाण की हो जाती है जिसके पत्र खराब हो या झड़ जांय।

(२) मीनपुच्छा गति उसकी होती है जो हीन मुष्टि द्वारा खींचा जाय।

(३) भ्रमरी गति वह कहाती है जो फेंका हुआ वाण कभी सीधा नहीं जाता। पर ऊंचे नीचे होकर जाता है।

निशाने से चुकाने वाली गतियें:—बायीं तरफ से जाना दायीं तरफ से जाना, ऊपर से और नीचे से जाना ये चार गतियां हैं जिनमें वाण लक्ष्य से चूक जाता है। यदि वाण की पुच्छ की ज्या पर की मुठी हिलजावे और अगली चाप पर की पकड़ सामने ही रहते बायीं ओर को वाण चला जाता है। जिसकी पकड़ ढीली हो और सरलता भी सर्वथा न हो तो वाण निःसन्देह दायीं ओर से निकल जायगा। चाप की मुष्टि ऊपर हो और गुण मुष्टि नीचे हो तो ऊपर से वाण निकल जायगा। यदि वाण छोड़ते समय चापमुष्टि नीचे होवे और गुणमुष्टि ऊंची हो जावे तो वाण नीचे से निकल

---

(१) सूचीमुखा गतिस्तस्यसायकस्यप्रजायते।
पत्रं विलोकितं यस्यक्षयथवाहीन पत्रकम्॥
(२) कर्करीनं सुचापेन यः कृष्टो हीन मुष्टि ना।
मीन पुच्छागतिस्तस्य सायकस्यप्रकीर्त्तिता॥
(३) भ्रमरीकथिताह्येषां सद्भिःस्तु भ्रमरूपेण।
वहुत्वेन विना याति क्षेप्यमाणस्तुसायकः॥

जाता है। (३३)

शुद्ध गतियें:—जिस समय लक्ष्य वाण का अगला भाग और नजर और मुष्टि इनको मेल हो जाय तब छोड़ा हुआ वाण लक्ष्य से कभी नहीं चूकता। दोष रहित निःशब्द दोनों मुष्टियों से छोड़ा हुआ वाण दृढ़ लक्ष्यों को भी अवश्य भेद देता है। अपने आप तेज किया और स्वयं खींचा हुआ शुद्ध गाढ मुष्टि से छोड़ा वाण मनुष्य, हाथी, घोड़े आदि के शरीर में अटकता नहीं। जिसके वाण तृण सदृश हो और धनुष इन्धन के सदृश हो और जिसकी जीवा प्राण के सदृश हो वह सब धनुर्धारियों का धनुर्धारी है। (३४)

---

(३३) वामगादक्षिणश्चैव ऊर्ध्वगधोधोगमास्तथा।
चतस्रोगतयः प्रोक्ताः वाण स्खलनहेतवः॥
कम्पते गुण मुष्टिस्तु मार्गणस्यतुपृष्ठतः।
समुखीस्याद्धनुर्मुष्टि स्तदा वामेगतिर्भवेत्॥
ग्रहणे शिथिलंयस्य ऋजुत्वेनविवर्जितम्।
पार्श्व तुदक्षिणं याति सायकस्यनसंशयः॥
ऊर्ध्व भवेच्चापमुष्टि गुणमुष्टि रधोभवेत्।
समुक्तोमार्गणोलक्ष्यदुर्ध्वं याति न संशयः॥
मोचणे चैववाणस्य चापे मुष्टिरधोभवेत्।
गुणमुष्टिर्भवदूर्ध्वं तदाधोगामिनीगतिः॥
(३४) लक्ष्य वाणाग्र दृष्टीनां संगतिस्तुयदाभवेत्।
तदानींमुञ्चितोवाणो लक्ष्यान्नस्खलति ध्रुवम्॥
निर्दोषः शब्दहीनश्च सममुष्टिद्वयोज्झितः।

चार प्रकार के दृढ़ लक्ष्य:—जिसका बाण लोहा, चर्म, घड़ा, मिट्टी का पिण्ड, इन चारों को भेद लेता है उसके बाण वज्र से भी नहीं कटते। आधे २ अंगुल मोटे लोहे के पत्ते काटे। उनको एक बाण से भेद कर अभ्यासी नर दृढ़घाती हो जाता है। जो मनुष्य एक बाण से २४ चर्म भेद डालता है उसका बाण हाथी के शरीर को चीर कर भी निकल जाता है। जल पर घूमता हुआ घड़े कुम्हार के चाक पर चढ़े मृत्पिण्ड को जो भेदता है वह दृढ भेदी कहाता है। काकतुण्ड बाण से लोह को आरामुख से चर्मों को मिट्टी के पिण्ड और घड़े को सूचीमुख बाण से वेधना चाहिये। (३५)

भिनत्ति दृढ़वध्यानि सायको नात्र संशयः ॥
स्वःकृष्टो तेजिनीयश्च सुगुप्तोगाढ़मुष्ठितः ।
नरनागाश्वकायेषु नतिष्ठतिसमार्गणः ॥
यस्यतृणसमावाणाः यस्येन्धनसमं धनुः ।
यस्यप्राण समामौर्वी सधन्वीधन्विनांवरः ॥
(३५) अयश्चर्म घटश्चैव मृत्पिण्डश्चचतुष्टयम् ।
योभिनत्तिनतस्येषुर्वज्रेणापिविदीर्यते ॥
सार्धाङ्गुलप्रमाणेन लोहपत्राणिकारयेत् ।
तान्निभित्वैक वाणेन दृढ़घातीभवेन्नरः ॥
चतुर्विंशति चर्माणियोभिनत्तीगुणानरः ।
तस्य वाणो गजेन्द्रस्य कायां निर्भिद्यागच्छति ॥
भ्राम्यं वृजले घटो भेद्यश्चक्रे मृत्पिण्डकं तथा ।
भ्रमन्ते वधयोद्योहिदृढ़ भेदी सउच्यते ॥

चित्रवेधनः—वाण का काटना, वाण का मोड़ना, काठ का छेदना, बिन्दु पर दो गोलें लगाना जो जानता है वह विजयी होता है। लक्ष्यस्थान पर रखे शरकण्डे के वाण को सामने रख कर छेद देवे। इस प्रकार अपनी पकड़ साधकर दो धारें फल वाले वाण से सामने से आते हुए वाणों को अपने वाण से काटे। वाण से वाण को काटने वाला वाणछेदी कहाता है। लकड़ी में बाल बांधकर उसमें कौड़ी बांधकर हाथ से घुमायी जावे उसको जो वेध दे वह धनुर्धर है। निशाने के स्थान पर लकड़ी का गोपुच्छ सदृश गुल्ला रखे उसे जो क्षुर-प्र वाण से काटडाले वह काष्ठ छेदी कहाता है। निशाने के स्थान पर एक बन्धूक के पुष्प के जितना श्वेत चिन्ह कर दे जो उसको भी वेध दे वही चित्र योधी है। दो काठ की गो-लियां खूब उच्चे बैटे हुए आदमियों ने छत पर से फेंकी उन दोनों को जो गोपुच्छवाण से ही इतनी फुर्ती से मारे कि पहले वाण लगने के पहले ही दूसरा वाण छोड़ा जाय और फिर भी दो पृथक् २ वाणों से दोनों को वेध दे वह धनुर्धारियों में भी श्रेष्ठ और पूजित समझा जाता है। (३६)

अयस्तुकाक्रतुण्डेन चर्म चारामुखे नहि।
मृत्पिण्डञ्चघटं चैव बिध्येत सूचीमुखेन वै॥

(३६) वाणभंगकरावर्त्तं काष्टच्छेदनमेव च।
बिन्दुके गोलक युगं योवेत्ति सजयी भवेत्॥
लक्ष्य स्थाने धृतं काण्डं सम्मुखं छेदयेत्ततः।
किञ्चिमुष्टिं विधायस्वां तिर्यग्द्वि फलकेषुणा॥
संमुखं वाणमायान्तं तिर्यग् वाणेन सञ्चरेत्।

दौड़ता हुआ निशाना—रथ, गज, अश्व या पैदल ही दौड़ता हुआ भी स्थिर लक्ष्य पर मारने का अभ्यास करना चाहिये। (३७)

शब्द वेधि—लक्ष्य के स्थान पर दो २ हाथ के अन्तर पर कांसीका पात्र रखे। पुनः वर्त्तन को रेता फेंक २ कर बजाया जाय। धनुर्धर जहां से शब्द आ रहा है उसे बड़ी ध्यान से सुने। और कर्णेन्द्रिय और मनो योग दोनों से लक्ष्य को स्थिर करले फिर जब रेता द्वारा शब्द झनके फिर एकवार शब्द के स्थान का निश्चय कर ले फिर क्रमशः लम्बाई को बढ़ाता जाय। फिर अन्धेरे में शब्द वेध का अभ्यास करे। फिर वाण से तीक्ष्ण

शरं शरेण यश्छिन्द्यात्द्वाणच्छेदीसजायते ॥
काष्ठेषु केश संलभ्यतत्रयहवा पराटिकां ॥
हस्तेनभ्राम्यमाणञ्च योहन्तिसधनुर्धरः ॥
लक्ष्यस्थानेन्यसेत्काष्ठंसार्धं गोपुच्छसंन्निभम् ॥
यच्छिन्द्यात्तत्तुरप्रेण काष्ठ छेदीसजायते ॥
लक्ष्येविन्दुं न्य सेच्छुभ्रं शुभवन्धूक पुष्पवत् ।
हन्तितंविन्दुकं यस्तु चित्रयोधीसउच्यते॥
काष्ठगोलयुगं क्षिप्तं दूरमूर्ध्वं पुरास्थितैः ।
असम्प्राप्तंशरंदृष्टि तज्ञोपुच्छमुखेनहि ॥
योहन्तिशरयुग्मेन शीघ्रसंधान योगतः ।
तस्याह्नुनुभूं ताम्रेष्ठः पूजितः सर्व पार्थिवैः ॥
(३७) रथस्थेनगजस्थेन हयस्थेन चपत्तिना ।
शाहताविश्रमः कार्यो लक्ष्यं हन्तु सुनिश्चितम् ॥

बुद्धि धनुर्धर शब्द वेध मारे यह कर्म बहुत कठिनता से सिद्ध होता है। (३८)

इस प्रकार जब तक सिद्धि न हो जाय तब तक अभ्यास करता रहे। अभ्यास सिद्ध हो जाने पर वर्षा के दिनों में धनुष हाथ में न लेवे। शस्त्रों के पूर्व कृत अभ्यास को बनाये रखने के लिये शरद काल के दोनों मास अभ्यास किया करें (३६)

इस प्रकार विश्वामित्रोक्त धनुर्वेद का तथा शार्ङ्गधर धनुर्वेद का शास्त्रीय रूप हमने पाठकों के सामने धर दिया

---

(३८) लक्ष्यस्यानेन्यवेत्कांस्यपात्रं हस्तद्वयान्तरे।
ताड्येच्छर्कराभिस्तत् शब्दः संजायते यदा॥
यत्रवैवोधते शब्द स्तंसम्यक् विचिन्तयेत्।
कर्णेन्द्रियमनो योगाल्लक्ष्यं निश्चयतां नयेत्॥
पुनः शर्करयातत्रताड़येच्छब्दहेतवे।
पुनर्निश्चयतांनेयः शब्दः स्थानानुसारतः॥
ततः किञ्चित्कृतंदूरे नित्यं २ विधानतः।
लक्ष्यं समभ्यसेद्धृध्वान्ते शब्दवेधनहेतवे॥
ततोबाणेनहन्यातदवधानेन तीक्ष्णधीः।
एतच्चदुष्करकर्म भागेकस्यापिसिद्ध्यति॥
(३९) एवंश्रमविधिकुर्यात् यावत्सिद्धिः प्रजायते।
श्रमेसिद्धे चवर्षासुनैवग्राह्यं धनुष्करे॥
पूर्वाभ्यासस्यशस्त्राणामविस्मरण हेतवे।
मासद्वयं श्रमं कार्यं प्रतिमासं शरदृतौ॥

अभी इसको एक बात और सुन लीजिये और फिर इस प्रकरण को समाप्त करेंगे। वह विशेष प्रकरण धनुर्धारी आचार्य तथा धनुर्धर शिष्य के अनध्याय विषयक बड़ा मनोरञ्जक है।

अनध्याय—अष्टमी, अमावस्या, चतुर्दशी और पूर्णिमा का आधा दिन सब कार्यों में निषिद्ध हैं। अकाल में बादल के गर्जने पर बादलों से मेघों के छा जाने पर या पहले ही मारे बाण के निशाने पर लग जाने पर धनुर्धर को अनध्याय मनाना चाहिये। प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व यदि बादल गरज जाय तो वह भी अकाल समझ कर अनध्याय कर दे। अभ्यास करते २ यदि सांप दृष्टि गोचर हो जावे या धनुष टूट जावे या डोरी टूट जावे फिर उस शस्त्र का अभ्यास न करे। (४०)

---

(४०) अष्टमी चामावास्या वर्जनीया चतुर्दशी।
पूर्णिमार्द्धं दिनं यावन्निसिद्धं सर्वकर्मसु॥
अकाले गर्जिते देवे दुर्भिक्षे चाथवाभवेत्।
पूर्वं कदहस्तलक्ष्यं मनध्यायं प्रचक्षते॥
अरुणोदयवेलायां वारिदोयदि गर्जति।
तद्दिनेस्यादनध्यास्तमयकालंप्रचक्षते॥
श्रमं चकुर्वतस्तत्रभुजंगो यदि दृश्यते।
अथवाभज्यते चापंयद्वैव श्रमकर्मणि॥
गुणयतेवा गुणोयत्र प्रथमे वाणमोचणे।
श्रमं ततत्रकुर्वीत शस्त्रेमतिमतांवरः॥

इस प्रकार धनुर्वेद का कितना स्पष्ट चित्र हमने पाठकों के सामने रख दिया। अब अगले प्रकरण में तन्त्रोक्त अस्त्र साधनोक्तमन्त्र सिद्ध अस्त्रों का वर्णन किया जायगा।

इति एकादश अध्याय

द्वादश अध्याय

तन्त्रोक्त मन्त्रास्त्र साधन

गत प्रकरण में हमने पाठकों को धनुर्वेदोक्त इष्वस्त्र या धनुष का पूरा वर्णन जितना भी सारिष्ठ प्राप्त हो सकता था भेंट कर दिया। अब केवल महास्त्र शेष रह गये हैं। महास्त्र प्रायः मन्त्र से सिद्ध होते हैं। अतः वे मन्त्रमुक्त कहाते हैं। यद्यपि वर्त्तमान में मन्त्रों पर विश्वास करने वाले बहुत कम हैं तथापि संस्कृत साहित्य में मन्त्र साधन को बहुत दृढ़ता पूर्वक माना गया है। अतः इस पर विश्वास करना ही चाहिये जब तक इसके विरुद्ध कोई प्रमाण न मिले और यथो विधि करने पर भी सिद्ध न हो। चाहे इस पर किसी सम्प्रदाय का विश्वास हो या न हो इस बात की सर्वथा अपेक्षा न करके मुझे यहां केवल शस्त्रास्त्रों के विषय में निरवशेष जो कुछ प्राप्त हुआ है; वैसा का वैसा ही दिखाने का प्रयत्न किया जायगा।

पूर्वोपचार—आश्विन मास की नवमी को देवता का दिन देखकर ईश्वरी चण्डी के गुरु के शस्त्रों के घोड़ों की पूजा

करे। ब्राह्मणों को दक्षिणा दे। एक कुमारी को भोजन करावे देवी के लिए पशु की बलि दे और फिर झांझ, भेरी, मृदङ्ग आदि बजते सुनकर प्रसन्न हो कर वेदोक्त तथा आगमोक्त (तन्त्रोक्त) मन्त्रों का साधन करे। और महास्त्रों का जप होमादि करके अस्त्रों को सिद्ध करे (१)

ब्राह्म, नारायण शैव ऐन्द्र, वायव्य, वारुण, आग्नेय, तथा अन्यान्य अस्त्र सब गुरु से ही ग्रहण करे। अस्त्रों का लाभ करके पुरुष मन वाणी और कर्म से शुद्ध रहे क्योंकि अपात्र और असमर्थ पुरुष को अस्त्र जला देते हैं। जो मनुष्य इन महास्त्रों के प्रयोगों को और उपसंहारों को भली प्रकार जानता है वही वास्तव में धनुर्धर है। छोटे मोटे कार्य में महास्त्र का प्रयोग न करे। इसके अनन्तर ये स्कंदोक्त अस्त्रों का विधान करते हैं। (२)

(१) ब्रह्मास्त्र, (२) ब्रह्मदण्ड (३) ब्रह्मशिरा, (४) पाशुपत (५) वायव्य, (६) आग्नेय, (७) नरसिंह, इन्ही महास्त्रों के नाना भेद हैं। हे द्रोण! सुनो उनको संहार सहित जानना

---

(१) ब्रह्मं नाराणं शैवमैन्द्रं वायव्यं वारुणं।
आग्नेयं चापराण्यस्त्राणि गुरुदत्तानि साधयेत्॥
मनो वाक् कर्म निर्भाल्यं लब्धास्त्रेण शुचिना।
अपात्रमसमर्थं च दहन्त्यस्त्राणि पुरुषम्॥
प्रयोगं चोपसंहारं योवेत्ति स धनुर्धरः।
सामान्ये कर्मणि प्राज्ञो नैवास्त्राणि प्रयोजयेत्॥
[२] स्कान्दपुराण केदार खण्ड०

चाहिये। वेदमाता सब प्रकार के शस्त्र को ग्रहण करती तथा दीप्त कर देती है। अब इनका प्रयोग सुन।

(१) प्रथम ब्रह्मास्त्र:—दादि दात्रा सावित्री को विपरीत क्रम से जप करे और दशखर्व १०,००,००,००,००,००० बार जप करके विधिवत् शर को भी अभिमन्त्रण करके शत्रुओं पर सहसा छोड़ दे तो सब जातियां नष्ट हो जाती हैं। बाल, वृद्ध गर्भस्थ जो कोई भी लड़ने को आये हैं वे सब मेरे प्रसाद से नष्ट हो जाते हैं।

संहारः—यथा क्रम ही दादि दात्र सावित्री को संहार सिद्धि के लिये जपे।

मन्त्रकास्वरूपः—ओ३म् द्रया दञो प्रणो योयोधि हिय धी। सा वेदगोंभरायं रेवंतु विसतद्र स्वो व भुंभूरोम्।

संहारमन्त्रः—ओ३म् भूर्भूव स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो-देवस्य धीमही। धियोयोनः प्रचोदयात्।

(२) ब्रह्मदण्ड:—ब्रह्मदण्ड के साधन में पहले प्रणव प्रचोदयात्, नो योधियः धीमहि देवस्य भर्गो वरेण्यम् सवि-तुस्तत् अमुकं अमुकं शत्रुं हनहन हुँ फट्" इस मन्त्र का २लाख जप कर शर को भी अभिमन्त्रण करके शत्रुपर प्रयोग करे तो सब शत्रु नष्ट हो जाते हैं इसी को विपरीत करके जपे तो संहार सिद्ध हो जायगा।

(३) ब्रह्म शिरा:—इस का मन्त्र इस प्रकार है:—ओ३म् धियो योनः प्रचोदयात् भर्गो देवस्य धीमहि तत्सवितुर्व-रेण्यं शत्रून्मे हनहन हुँ फट। यह प्रयोग कर ब्रह्मशिरा अस्त्र

शत्रूपर फेंकना चाहिये। इसकी सिद्धि के लिये प्रथम पुरश्चर्या करके ३ लाख वार एकान्त में सावधान होकर जप करे। सर्व शत्रु सब देवता और असुर भी नष्ट हो जाते हैं। इसके संहार के लिए इसी को उलट कर बोलदे।

(४) पाशुपत:—इस महास्त्र के ज्ञान मात्र से सब शत्रु नष्ट हो जाते हैं। दादि दात्रा सावित्री को ओंकार सहित साथ ही श्लींपशु हुँ फट् अमुक शत्रून् हनहन हुँ फट इसको २ लाख वार जप कर पाशुपत का प्रयोग करे उसको उलटा जपने से संहार सिद्ध होगा। यही सब शत्रुओं का निवारण करने वाला पाशुपत अस्त्र कहाता है।

(५) वायव्यास्त्र:—अब वायव्यास्त्र कहा जाता है जिस से सब शत्रु नष्ट हो जाते हैं।

मन्त्र:—ओ३म् वायव्यया वायव्यया रथौर्वायया वा असुक शत्रून् हन हन हुं फट् यह १०००० दश सहस्र वार जपे। संहार के लिये विपरीत जपे।

(६) आग्नेय:—आग्नेय वह कहा जाता है जिससे शत्रु का वल जला दिया जाय।

मन्त्र:—ओ३म् अग्नि स्त्यता दङ्भुंच शिव वनाश्वा त्रिणी हगाहुति दश रूपन सहोदति तोयतिसममसो वाघान सुसेदवे दया अमुकादी हन हन हुं फट्। इसी को व्यास्त्र कर के संहार करे।

(७) नरसिंहास्त्रः—मन्त्र, ओ३म् वज्र नख दंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट् यह लक्ष्य वार जपकर नरसिंहास्त्र को छोड़े तो सिंह रूप वाण शत्रुओं के दलों पर पड़ते हैं। पहले कहे प्रकार से ही इस का संहार करे।

यह महास्त्र का प्रकरण स्कन्द पुराण में केदार खण्ड में स्कन्द द्रोण संवाद में कहा गया है।

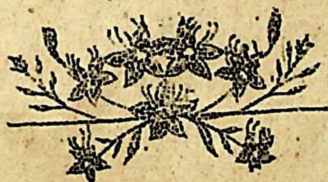
पाठक महोदय जान सकते हैं कि प्राचीन महापुरुषों ने किस आत्मनिष्ठा और तपोबल से इन महास्त्रों और शस्त्रों का आविष्कार किया था। यद्यपि इनका अब लेशमात्र भी उपलब्ध नहीं होता और केवल पुस्तकों में यत्र तत्र अवशेष का गन्ध ही कुछ २ आता है परन्तु इससे वास्तविक सत्ता का अपलाप करना सर्वथा अनुचित है। भयंकर गदा, शतघ्नी, नालिकास्त्र तथा पूर्व प्रदर्शित आसुरी माया का आविष्कार ही इस बात का प्रबल प्रमाण है। भारतवर्ष आग्नेयास्त्र में किसी का ऋणी नहीं प्रत्युत सब संसार का गुरु है।

बहुतों का यह आग्रह है कि भारतीयों ने इन विद्याओं को क्यों छिपा रखा। ठीक है; इस आसुरीमाया का संगोपन ही श्रेयस्कर है। भारतवर्ष का रुद्र सदा अपनी प्रजा पर नहीं मण्डलाता था जहां अस्त्र महास्त्रविज्ञ महासंहारक शक्ति के प्रभु थे वहां मनु भगवान् के सदृश दयालु पितर धर्म नियम करते थे कि क्रूर और आसुर संहारी अस्त्र का कोई प्रयोग न करे। बस इसी कारण यह विद्या कभी सर्व साधारण तक नहीं फैल सकी और सब ऐसी भयंकर विद्या तथा मद देने

वाली शक्ति के अधिकारी भी नहीं थे। जिस जिसके हाथ में यह शक्ति कभी आयी है उस उसने हो संसार में तबाहा फैलायी है। ऐसी अधी शक्ति का प्रकाश न होना ही उत्तम था। प्रकाशित होकर दुरुप योग होने के अपेक्षा।

ओ३म् शम्





Printed by K. C. Bhalla at the Star Press, Allahabad.

स्टार बुक डिपो प्रयाग की अनोखी और सर्वोपयोगी हिन्दी पुस्तकें ।

१—अर्थ शास्त्र-धन विद्या ले० प्रो० बालकृष्ण एम० ए० १)
२—स्वराज्य " " १)
३—वैदिक राज्य " " ।)
४—बालोपदेश ले० श्रीयुत पं० रामनारायण जी मिश्र बी०ए० ।)
५—ऋतुचर्या ले० श्रीयुत पं० केशवदेवजी शास्त्री एम०डी० १)
६—धर्म शिक्षा (प्रथम भाग) " " ।)
७—धर्म शिक्षा (द्वितीय भाग) " " ।=)
८—उपदेश माला (प्रथम भाग) " ।)
९—वकील हैवानात (उर्दू) ।)
१०—ईसाई सिद्धान्त दर्पण ।)
११—आर्य्य समाज क्या है -)
१२—फलाहार तथा मांस भक्षण -)
१३—स्वराज्य और हमारी योग्यता ।)
१४—ईश्वरीय, ज्ञान वेद १॥)
१५—फ्लारेंस नाइटिंगेल =)
१६—वीर राजपूत नाटक ।)
१७—आदर्श महिलाएँ ॥)
१८—महात्मा हंसराज ।)
१९—भीमसेन और आर्य्य समाज ।)
२०—आर्य्यों की वैज्ञानिक उन्नति ।)
२१—मोक्ष प्राप्ति के साधन (महात्मा हंसराज का व्याख्यान) -)
२२—कुछ उपयोगी बातें ले० बसन्त लाल =)
२३—पं० गुरुदत्त विद्यार्थी ले० सत्यव्रत शर्मा ।)
२४—संध्या (अर्थ सहित) ले० सत्य प्रकाश ।)

पता—स्टार बुक डिपो, प्रयाग ।




1956

यजुर्वेद
३०